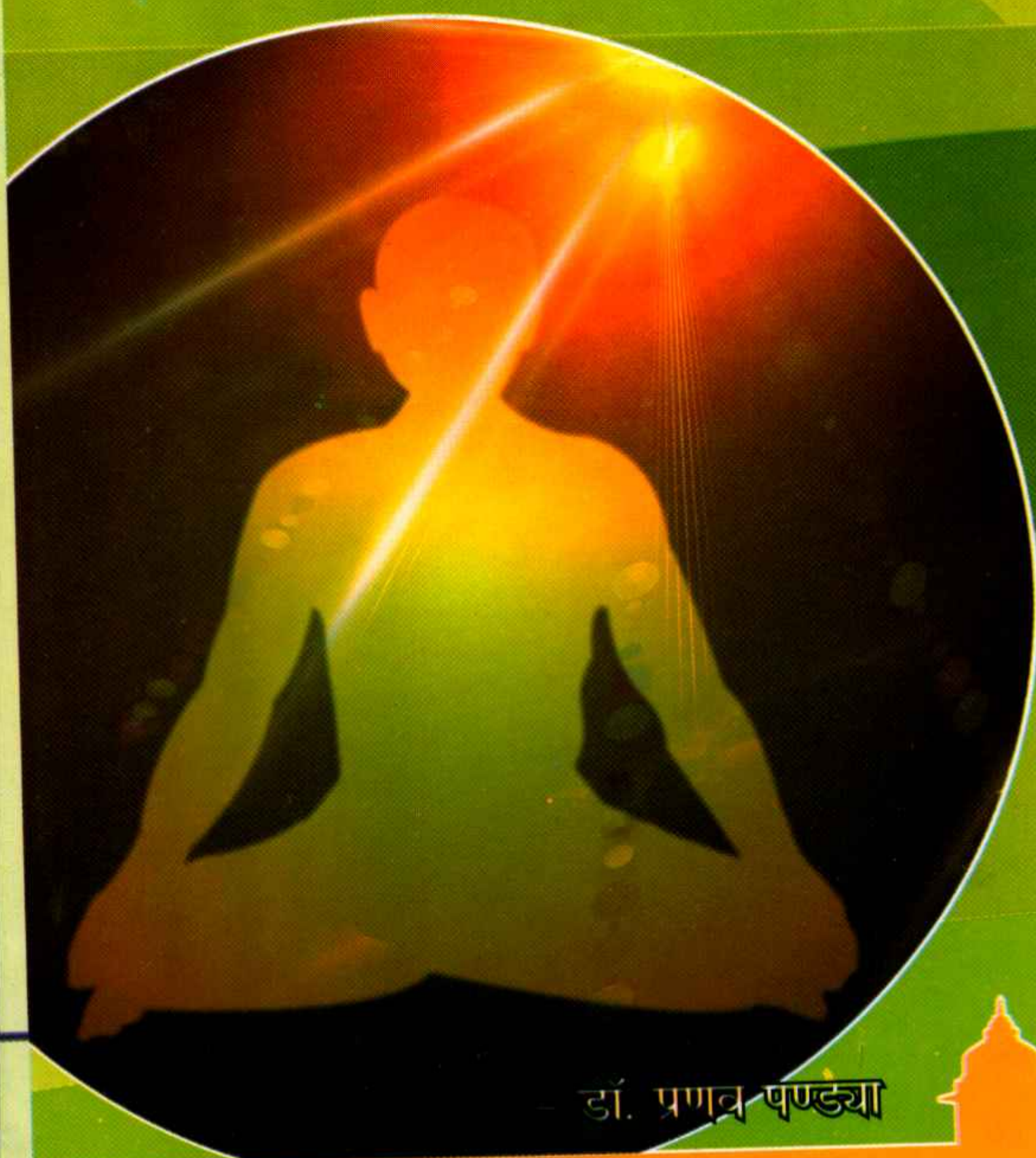
आध्यात्मिक चिकित्सा एक समग्र उपचार पद्धति



डॉ. प्रणव पण्ड्या



वेदमूर्ति, तपोनिष्ठ पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
१९११-१९९०

स्नेहसलिला, शक्तिस्वरूपा माता भगवती देवी शर्मा
१९२६-१९९४

ऋषियुग्म के रूप में संव्याप्त
प्रज्ञावतार की सत्ता को
शत-शत नमन-समर्पण

आध्यात्मिक चिकित्सा एक समग्र उपचार पद्धति



लेखक

डॉ. प्रणव पण्ड्या



प्रकाशक

श्री वेदमाता गायत्री ट्रस्ट (TMD)

गायत्री नगर, श्रीरामपुरम्-शांतिकुंज, हरिद्वार

(उत्तराखण्ड) पिन-249411



सन् 2011 मूल्य- 31/-

आध्यात्मिक चिकित्सा
एक समग्र उपचार पद्धति

प्रकाशक

श्री वेदमाता ट्रस्ट (TMD)
शांतिकुंज, हरिद्वार (उत्तराखण्ड)

लेखक

डॉ. प्रणव पण्ड्या

सन् 2011

मूल्य- 31/-



गायत्रीतीर्थ-शांतिकुंज, हरिद्वार
(उत्तराखण्ड) 249411

Ph.No.Off.- 01334-260602, 260403, 261328 Fax-260866
Email:shantikunj@awgp.org www.awgp.org

लेखक की ओर से

जीवन रोगों के भार और मार से बुरी तरह टूट गया है। जब तन के साथ मन भी रोगी हो गया हो, तो इन दोनों के योगफल के रूप में जीवन का यह बुरा हाल भला क्यों न होगा ? ऐसा नहीं है कि चिकित्सा की कोशिशें नहीं हो रही। चिकित्सा तंत्र का विस्तार भी बहुत है और चिकित्सकों की भीड़ भी भारी है। पर समझ सही नहीं है। जो तन को समझते हैं, वे मन के दर्द को दरकिनार करते हैं। और जो मन की बात सुनते हैं, उन्हें तन की पीड़ा समझ नहीं आती। चिकित्सकों के इसी द्वन्द्व के कारण तन और मन को जोड़ने वाली प्राणों की डोर कमजोर पड़ गयी है।

पीड़ा बढ़ती जा रही है, पर कारगर दवा नहीं जुट रही। जो दवा ढूँढी जाती है, वही नया दर्द बढ़ा देती है। प्रचलित चिकित्सा पद्धतियों में से प्राय: हर एक का यही हाल है। यही वजह है कि चिकित्सा की वैकल्पिक विधियों की ओर सभी का ध्यान गया है। लेकिन एक बात जिसे चिकित्सा विशेषज्ञों को समझना चाहिए, उसे नहीं समझा गया। समझदारों की यही नासमझी सारी आफतों-मुसीबतों की जड़ है। यह नासमझी की बात सिर्फ इतनी है कि जब तक जिन्दगी को सही तरह से नहीं समझा जाता, तब तक उसकी सम्पूर्ण चिकित्सा भी नहीं की जा सकती।

जीवन- तन और मन के जोड़ से कुछ अधिक है। इसमें अन्तर्भावना, अन्तर्चेतना एवं अन्तरात्मा जैसे अदृश्य आयाम भी हैं। शारीरिक अंगों की गठजोड़ को बायलॉजी पर आधारित मेडिकल साइन्स से समझा जा सकता है। मन की चेतन-अचेतन परतें साइकोलॉजी द्वारा पढ़ ली जाती है। पर अतिचेतन की इबारत कौन पढ़े ? प्रारब्ध और संस्कारों का लेखा-जोखा कौन सम्हाले ? ये गहरी बातें तो अध्यात्म विद्या से ही जानी-समझी जाती है। आध्यात्मिक दृष्टि से ही जीवन की यथार्थता और सम्पूर्णता पता चलती है। इस सम्पूर्णता के बलबूते ही सम्पूर्ण चिकित्सा का विधान सम्भव है।

यही वजह है कि अध्यात्म विद्या, आध्यात्मिक दृष्टि एवं आध्यात्मिक चिकित्सा की जरूरत को आज सभी अनुभव कर रहे हैं। इस पुस्तक के लेखक

के रूप में मैंने इन आध्यात्मिक सत्यों को जिया है, अनुभव किया है। युगऋषि परम पूज्य गुरुदेव के सान्निध्य, साहचर्य एवं सेवा में जीवन के जो पल बीते हैं, वे अनिवर्चनीय अनुभूतियों एवं उपलब्धियों से भरे रहे हैं। गुरुदेव अध्यात्म विद्या एवं अध्यात्म चिकित्सा के परम विशेषज्ञ थे। उनकी इस विशेषज्ञता के क्षितिज में आध्यात्मिक चिकित्सा की नित नयी आभा को बिखेरते-विकीर्ण होते हुए मैंने अपनी इन्हीं आँखों से देखा है।

कई अवसरों पर उन्होंने स्वयं मुझे अपने पास बैठा कर आध्यात्मिक चिकित्सा की सच्चाई को बताया और समझाया। उनके श्रीमुख से जो सूत्र, उनके श्री चरणों में बैठकर जो सीखा, उसी को बताने की चेष्टा इस पुस्तक की पंक्तियों में की गयी है। इस पुस्तक में जो कहा गया है, वह न तो कई ग्रन्थों के अध्ययन का सार है और न शब्दों का ऐन्द्रजालिक गठजोड़। इसमें तो बस अपनी अनुभूतियों एवं उपलब्धियों को उदारतापूर्वक अपनों में बांटने की चेष्टा की गई है। इस सच्चाई को पढ़ने वाले पुस्तक की प्रत्येक पंक्ति, शब्द में अनुभव करेंगे। पढ़ने वालों की इन अनुभूतियों में उनके सम्पूर्ण स्वस्थ जीवन की उपलब्धि भी जुड़े, यही गुरुसत्ता से प्रार्थना है।

- डॉ. प्रणव पण्ड्या

विषय-सूची

आध्यात्मिक चिकित्सा

आध्यात्मिक चिकित्सा- बोध, निदान एवं विज्ञान का पूर्ण तंत्र है। इसमें जीवन की दृश्य-अदृश्य संरचना का सम्पूर्ण बोध है। इसी के साथ यहाँ जीवन के दैहिक-दैविक एवं आध्यात्मिक रोगों के निदान की सूक्ष्म विधियों का समग्र ज्ञान है। इतना ही नहीं इसमें इन सभी रोगों के सार्थक समाधान का प्रायोगिक विज्ञान भी समाविष्ट है, जो मानव जीवन की सम्पूर्ण चिकित्सा के ऋषि संकल्प को दुहराता है।

यह वही महासंकल्प है, जो ऋग्वेद के दशम मण्डल के रोग निवारण सूक्त के पंचम मंत्र के ऋषि विश्वामित्र की अन्तर्चेतना में गूँजा था। नवयुग की नवीन सृष्टि करने वाले ब्रह्मर्षि विश्वामित्र उन क्षणों में चिन्तन में निमग्न थे। तभी उन्हें एक करूण, आर्त स्वर सुनाई दिया। यह विकल स्वर एक दु:खी नारी का था, जिसे उनका शिष्य जाबालि लिए आ रहा था। इस युवती नारी को रोगों ने असमय वृद्ध बना दिया था।

पास आते ही ब्रह्मज्ञानी महर्षि ने उसकी व्यथा के सारे सूत्र जान लिए। और जाबालि को सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा- वत्स! चिकित्सा की सारी प्रचलित विधियाँ एवं औषधियाँ इस पर नाकाम हो गयी हैं, यही कहना चाहते हो न। हां आचार्यवर...। वह अभी आगे कुछ कह पाता तभी ऋषि बोले- वत्स! अभी एक चिकित्सा विधि बाकी है- और वह है आध्यात्मिक चिकित्सा। तुम्हारे सम्मुख मैं आज इसका प्रयोग करूँगा।

शिष्य जाबालि अपने आचार्य की अनन्त आध्यात्मिक शक्तियों से परिचित थे, सो वे शान्त रहे। फिर भी उनमें जिज्ञासा तो थी ही। जिसका समाधान करते हुए अन्तर्यामी ब्रह्मर्षि बोले- पुत्र जाबालि, सफल चिकित्सा के लिए जीवन का समग्र बोध आवश्यक है। और जीवन मात्र देह नहीं है। इसमें इन्द्रिय, प्राण, मन, चित्त, बुद्धि, अहं एवं अन्तरात्मा की अन्य अदृश्य कड़ियाँ भी हैं। रोग के सही निदान के लिए इनका पारदर्शी ज्ञान होना चाहिए। तभी समाधान का

विज्ञान कारगर होता है। यह कहते हुए महर्षि ने उस पीड़ित नारी को सामने बिठाकर उसे अपने महातप के एक अंश का अनुदान देने का संकल्प करते हुए कहा- **आ त्वागमं शंतातिभिरथो अरिष्टातातिभिः। दक्षं त उग्रमाभारिषं परा यक्ष्मं सुवामि ते॥**

अर्थात्- 'आपके पास शान्ति फैलाने वाले तथा अविनाशी साधनों के साथ आया हूँ। तेरे लिए प्रचण्ड बल भर देता हूँ। तेरे रोग को दूर भगा देता हूँ।' महर्षि के इस संकल्प ने उस पीड़ित नारी को स्वास्थ्य का वरदान देने के साथ आध्यात्मिक चिकित्सा की पुण्य परम्परा का प्रारम्भ किया।



अथर्वण विद्या की चमत्कारी क्षमता

आध्यात्मिक चिकित्सा की पुण्य परम्परा वैदिक ऋचाओं की गूंज के साथ ही प्रारम्भ हो गयी। अपने जीवन के ऊषाकाल से ही मनुष्य को विकृति एवं विरोधों से अनेकों संघर्ष करने पड़े। इन संघर्षों में कभी तो उसकी देह क्षत-विक्षत हुई तो कभी अन्तर्मन विदीर्ण हुआ। भावनाओं के तार-तार होने के भी अनगिनत अवसर आए। विपन्नता और धनहीनता के दुःख भी उसने झेले, शत्रुओं द्वारा दी जाने वाली विषम पीड़ाएँ भी उसने सहीं। छटपटाहट भरी इन पीड़ाओं के बीच उसने समाधान की खोज में कठिन साधनाएँ की। महातप की ज्वालाओं में उसने अपने जीवन को झोंका। प्रश्न एक ही था- जीवन की विकृतियों के निदान एवं उसके चिकित्सकीय समाधान।

आत्मचेतना के केन्द्र में- परमात्म चेतना के सान्निध्य में उसे समाधान के स्वर सुनाई दिए। महातप की इस निरन्तरता ने उसके सामान्य व्यक्तित्व का ऋषिकल्प कर दिया। और उसने कहा-

तं प्रत्नास ऋषयो दीध्यानाः पुरो विप्राः दधिरे मन्द्रजिह्वम्। -ऋग्वेद ४/५०/१

इस ऋषि अनुभूति से यह स्पष्ट ध्वनि निकलती है कि प्राचीन ऋषिगण परब्रह्म का ध्यान कर उन्हें अपने सामने प्रकट कर लेते थे। और मन्द्रजिह्व परमात्मा द्वारा उन्हें वेदमंत्रों का उपदेश प्राप्त होता था। इन वेदमन्त्रों के शब्दार्थ कीथ एवं ब्लूमफील्ड जैसे पश्चिमी विद्वान कुछ भी खोजते रहे; पर अपने रहस्यार्थ में ये जीवन की आध्यात्मिक चिकित्सा के मंत्र हैं। आध्यात्मिक चिकित्सा के इस दिव्य काव्य के विषय में अथर्ववेद के ऋषि ने कहा-

पश्य देवस्य काव्यं न ममार न जीर्यति।

परमात्मा के काव्य (वेद) को देखो, वह न नष्ट होता है और न मरता है।

सचमुच ही इस अमृत काव्य में जीवन की सम्पूर्ण एवं सर्वविधि आध्यात्मिक चिकित्सा के अनेकों सूक्त, सूत्र एवं आयाम समाहित हैं। अपने

महातप से असंख्य पीड़ित जनों की आध्यात्मिक चिकित्सा करने वाले ब्रह्मर्षि गुरुदेव ने वर्षों पूर्व इस सत्य को अपनी लेखनी से प्रकट किया था। उन्होंने ऋग्, यजुष, साम व अथर्व वेद के कतिपय विशिष्ट मंत्रों की आध्यात्मिक चिकित्सा के सन्दर्भ में महत्ता तथा इनकी प्रयोग विधि को उद्घाटित किया था। 'वैदिक मंत्र विद्या' के रूप में यह आश्चर्यजनक एवं चमत्कारी रूप से उपादेय थी, पर आज अनुपलब्ध है।

हालांकि वर्ष १९८८ में यह दिव्य ग्रन्थ एक परिजन के हाथों ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान के शोधकर्मियों को प्राप्त हुआ था। तब इसको आधार बनाकर 'वेदों में मानव जीवन का स्वरूप एवं उसकी आध्यात्मिक चिकित्सा के रहस्य' के शीर्षक से एक शोध कार्य भी कराया गया था। पर इन दिनों शोध कार्य भी संस्थान में नहीं है। परन्तु जो कार्य कराया गया था, उसके आधार पर बड़ी ही प्रामाणित रीति से कहा जा सकता है कि वेद मानव जीवन की आध्यात्मिक चिकित्सा के आदि स्रोत हैं। इनमें केवल देह की पीड़ा को दूर करने की विधियाँ भर नहीं है। बल्कि मानसिक रोगों की निवृत्ति, दरिद्रता निवारण, ब्रह्मवर्चस व स्मरण शक्ति के वर्धन, घर-परिवार की सुख-शान्ति एवं सामाजिक यश, सम्मान में अभिवृद्धि के अनेकों प्रयोग शामिल हैं।

एक लघु आलेख में इन सभी के प्रयोग के विस्तार की व्याख्या तो सम्भव नहीं है। परन्तु एक सामान्य प्रयोग की चर्चा तो की ही जा सकती है। यह चर्चा ऋग्वेद के दशम् मण्डल के १५५ वें सूक्त के बारे में है। यदि कोई व्यक्ति धनलक्ष्मी से विहीन होकर जीवन यापन कर रहा हो, तो वह इस सूक्त के समस्त पाँचों मंत्रों का नित्य प्रात:काल स्नान करने के पश्चात् १०१ बार जप करे। इस जप से पहले एवं बाद में गायत्री महामंत्र की एक-एक माला का जप आवश्यक है। वेद में प्रयोग अनेकों एवं विधियाँ असंख्य हैं। महाकाव्य एवं पुराणकाल में इन विधियों एवं प्रयोगों का उल्लेख महाकाव्यों एवं पुराणों में हुआ। वाल्मीकि रामायण एवं महाभारत में जीवन की अनगिनत समस्याओं के समाधान हेतु विभिन्न प्रयोगों की सांकेतिक या विस्तार से चर्चा की गयी है।

आध्यात्मिक चिकित्सा के ये प्रसंग ऐतरेय ब्राह्मण, तैत्तिरीयब्राह्मण, शतपथ

ब्राह्मण, ताण्ड्य ब्राह्मण तथा षडविंश ब्राह्मण में भी पर्याप्त मिलते हैं। देवीभागवत पुराण, अग्निपुराण, नारदादिपुराणों में तो इनकी भरमार है। इस सन्दर्भ में सूत्र ग्रन्थ भी पीछे नहीं हैं। यहाँ भी आध्यात्मिक चिकित्सा से सम्बन्धित अनेकों प्रयोग विधियाँ मिलती हैं। कल्प सूत्र, श्रोतसूत्र, गृह्यसूत्र, धर्मसूत्र एवं शुल्बसूत्र में इस विषय पर इतनी प्रचुर सामग्री है, जिसके आधार पर एक शोधग्रन्थ तैयार किया जा सकता है।

ऐसी अनेकों सत्य घटनाएँ हैं, जो ऋषि भूमि भारत की आध्यात्मिक चिकित्सा के पुण्य प्रवाह की साक्षी रही हैं। आधुनिक बुद्धि भले ही इन्हें कल्पित गल्प माने, लेकिन जिन्हें भारतीय इतिहास के सच का ज्ञान है, जो ऋत् के प्रति आस्थावान हैं, वे इन्हें स्वीकारने में संकोच न करेंगे। जिस सत्य घटना का जिक्र यहाँ किया जा रहा है, वह उत्तर वैदिक काल की है। उन दिनों वेदत्रयी की ही मान्यता थी। अथर्वण विद्याएँ अपनी प्रतिष्ठा पाने के लिए प्रयत्नशील थीं। इन्हीं दिनों हस्तिनापुर नरेश महाराज शान्तनु बीमार पड़े। उनका दूसरा विवाह सत्यवती से हो चुका था। और कुरुवंश के गौरव देवव्रत युवराज पद को त्याग कर भीष्म बन चुके थे।

उनकी पितृभक्ति, महात्याग, कर्त्तव्यनिष्ठा एवं निरन्तर सेवा मिलकर भी महाराज शान्तनु को राहत नहीं दे पा रहे थे। उनका स्वास्थ्य निरन्तर गिरता जा रहा था। मन की क्लान्ति एवं अशान्ति बढ़ती जा रही थी। महारानी सत्यवती भी घबराई हुई थीं। क्योंकि प्राणवान औषधियाँ निष्प्राण साबित हो रही थीं। और गुणवान वैद्य गुणहीन प्रमाणित हो रहे थे। किसी को उम्मीद नहीं थी कि महाराज शान्तनु का जीवन बच पाएगा। सत्यवती ने अन्तिम प्रयास के रूप में महर्षि व्यास का स्मरण किया। पितृभक्त भीष्म उन्हें आदरपूर्वक ले आए।

व्यास ने स्थिति की सम्पूर्ण जानकारी ली और माता सत्यवती से कहा- माँ! यह कार्य कम से कम मेरे लिए तो असाध्य है। हाँ परम तपस्वी महर्षि दध्यङ्ग अथर्वण चाहे तो वे कुछ कर सकते हैं। व्यास की बातें सुनकर भीष्म उन्हें लेने के लिए उनके पास पहुँचे। पहले तो उन्होंने चलने से मना किया, पर बाद में महर्षि व्यास के अनुरोध पर तैयार हो गए। राजमहलों, राजपुरुषों एवं

राजनीति से पर्याप्त दूरी बनाकर रखने वाले महर्षि अथर्वण का हस्तिनापुर आना किसी चमत्कार से कम न था। आते ही उन्होंने महाराज शान्तनु को देखा और जोर से ठहाका मार कर हँसे। उनकी हँसी देर तक बिना रूके चलती रही। सभी उपस्थित जन चकित थे।

तभी उन्होंने थोड़े से आक्रोशित लहजे में कहा– महाराज, दिखने में तो आप की देह रोगी है, पर दरअसल आप प्रारब्ध के कुयोग एवं अपनी मनोग्रन्थियों से पीड़ित हैं। समग्र उपचार के लिए आपको चिन्तन शैली एवं जीवन क्रम बदलना होगा। शान्तनु के आश्वासन देने पर उन्होंने अपनी चिकित्सा प्रारम्भ की। इसमें औषधियों के कल्प थे तो मंत्रों के प्रयोग भी। कई तरह के ऐसे अनुष्ठान थे जिनके प्रभाव से शान्तनु की देह एवं मन की स्थिति बदलने लगी। अथर्वण विद्या के प्रभाव को सभी देख रहे थे। इस घटना के साक्षी बने महर्षि व्यास ने उनसे कहा ऋषिवर! आध्यात्मिक चिकित्सा की आपकी विधियाँ चमत्कारी हैं। यह पुण्य प्रक्रिया चलती रहे, इसके लिए अथर्ववेद का प्रणयन आवश्यक है। अथर्वण के आशीर्वाद से अथर्ववेद रचा गया। और सभी ने आध्यात्मिक चिकित्सक के रूप में वेदज्ञानी गुरु का महत्त्व पहचाना।



सद्गुरु की कृपा से तरते हैं भवरोग

यामि गुरुं शरणं भववैद्यम्- जीवन के सभी सांसारिक रोगों के आध्यात्मिक चिकित्सक वही सद्गुरु मेरे आश्रय हैं। जीवन की प्रकृति, समय और परिस्थितियों के विपरीत होने से कई बार प्रदूषित होती है। उसमें विकृति एवं विकार पनपते हैं। कई तरह के शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक रोग उसे घेर लेते हैं। सामान्य चिकित्सक न तो इनकी तह तक पहुँच पाते हैं और न इनका समाधान कर पाते हैं। वजह एक ही है कि इनका समाधान सामान्य औषधियाँ नहीं बल्कि उपयुक्त जीवन साधना है। जिसे केवल समर्थ आध्यात्मिक चिकित्सक ही बता सकता है। संक्षेप में कहें तो सद्गुरु के स्वरों में ही समाधान के सूत्र होते हैं।

सवाल पूछा जा सकता है कि सद्गुरु कौन ? तो इस महाप्रश्न का सरल उत्तर यह है कि सद्गुरु वे हैं जो मनुष्य जीवन के दृश्य एवं अदृश्य सभी आयामों के मर्मज्ञ होते हैं। मानवीय चेतना की सम्पूर्णता का उन्हें विशेषज्ञ अनुभव होता है। वे हमारे वर्तमान को जानने की जितनी गहन क्षमता रखते हैं, अतीत के बारे में भी वे उतनी ही जानकारी रखते हैं। साथ ही उन्हें हमारे भविष्य का पारदर्शी ज्ञान होता है। शरीर की कार्यक्षमता, मन की विचार शैली, चित्त में समाये जन्म-जन्मान्तर के कर्म संस्कार, अहंकार की उलझी गांठें, सद्गुरु इन सभी के बारे में बखूबी जानते हैं। उनमें इनके परिमार्जन, परिष्कार की अपूर्व क्षमता होती है। यही कारण है कि सद्गुरु का मिलन हमारे महासौभाग्य का सूचक है। यह इस सत्य का उद्घोष है कि हमारे जीवन की सम्पूर्ण आध्यात्मिक चिकित्सा की शुभ घड़ी आ गयी।

जिन्हें यह अवसर मिला है, उनकी अनुभूति में हम इस सच्चाई का अहसास पा सकते हैं। जिन पलों में इस अनुभूति को घटित होने का क्रम प्रारम्भ हुआ, उन दिनों हमारे अपने सद्गुरु गायत्री तपोभूमि-मथुरा को केन्द्र बनाकर अपनी योजना को आकार दे रहे थे। यह १९५५ का वर्ष था। तपोभूमि में विशिष्ट यज्ञों की

शृंखला चल रही थी। इसमें १. चारों वेदों का पारायण यज्ञ, २. महामृत्युञ्जय यज्ञ, ३. रुद्र यज्ञ, ४. विष्णु यज्ञ, ५. शतचण्डी यज्ञ, ६. नवग्रह यज्ञ , ७. गणपति यज्ञ, ८. सरस्वती यज्ञ, ९. ज्योतिष्टोम, १०. अग्निष्टोम आदि अनेक यज्ञों की प्रक्रियाएँ शामिल थीं।

कर्मकाण्ड के महान् विद्वानों का विशिष्ट सम्मेलन था यह। मंत्रविद्या के अनेकों महारथी पधारे थे। कर्मकाण्ड के स्थूल प्रयोग सूक्ष्म को किस तरह प्रभावित करते हैं ? किस विधि जीवन चेतना रूपान्तरित होती है ? मनुष्य की अन्तर्निहित शक्तियों के जागरण के प्रयोग सफल कैसे हों ? आदि अनेक गम्भीर प्रश्नों पर चर्चा चल रही थी। परम पूज्य गुरुदेव इस चर्चा को मौन भाव से सुन रहे थे। सुनते-सुनते जहाँ कहीं आवश्यक होता, वहाँ वह अपनी अनुभूति का स्वर जोड़ देते। उनकी मौलिकता से इस विशद् चर्चा में नवप्राणों का संचार हो जाता।

चर्चा के इस क्रम में बड़ा विचित्र व्याघात हुआ। सभी की दृष्टि उन रोते-कलपते प्रौढ़ दम्पति की ओर गयी, जो अपने किशोर पुत्र को लेकर आए थे। उनका यह किशोर बालक कई जीर्ण बीमारियों से पीड़ित था। लगभग असहाय एवं अपाहिज स्थिति थी उसकी। निस्तेज मुख, बुझी हुई आँखें, कृशकाय, लड़खड़ाते कदम। बस जैसे उसके मां-पिता ने उसे लाकर गुरुदेव के पाँवों में डाल दिया। आप ही बचा सकते हैं- मेरे बेटे को। यही एक रट थी उन दोनों की। गुरुदेव ने बड़ी आत्मीयता से उनकी बातें सुनी। फिर उन्हें थोड़ा समझाया-बुझाया और उनके ठहरने की उचित व्यवस्था कर दी।

क्या होगा इस असाध्य रोग से घिरे किशोर का ? उपस्थित सभी महान् विद्वानों को जिज्ञासा थी। किस विधि से आचार्य श्री चिकित्सा करेंगे इसकी ? ऐसे अनेक प्रश्न उन सभी के मन में उभर रहे थे। उधर परम पूज्य गुरुदेव पूर्णतया आश्वस्त थे। जैसे उन्होंने उसकी चिकित्सा पद्धति खोज ली हो। वह सहज ही उपस्थित जनों को उनकी अनुत्तरित जिज्ञासाओं के साथ छोड़कर अपनी दिनचर्या में व्यस्त हो गए। दिन के यज्ञीय कार्यक्रम, विद्वानों की चर्चाएँ एवं आने वाले परिजन-आगन्तुकों से भेंट, सब कुछ चलता रहा। पर कहीं अपने मन के किसी कोने में सभी को अगले दिन की प्रतीक्षा थी।

अगले दिन प्रात: अरूणोदय के साथ ही वेदमंत्रों के स्वर गूंजने लगे। स्वाहा के घोष के साथ सविधि यज्ञीय आहुतियाँ यज्ञकुण्डों में पड़ने लगीं। भगवान् जातवेदस् अपने प्रखर तेज के साथ भुवन भास्कर को चुनौती सी दे रहे थे। इतने में सभी ने देखा कि कल आया हुआ वह किशोर बालक अपने पाँवों से चलकर अपने माता-पिता के साथ आ रहा है। एक रात्रि में यह अपूर्व चमत्कार। सभी अचरज में थे। उनके इस अचरज को और अधिक करते हुए उस किशोर वय के बालक ने कहा, आप मुझे शिष्य के रूप में अपना लीजिए गुरुदेव।

गुरुदेव ने उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा- बेटा, तुम मेरे अपने हो। तुम हमेशा से मेरी आत्मा के अभिन्न अंश हो। परेशान न हो सब ठीक हो जाएगा। पर किस तरह आचार्य जी, एक विद्वान ने पूछ ही लिया। उत्तर में गुरुदेव उनसे बोले- मिश्र जी, बीमारियाँ दो तरह की होती हैं, १. असंयम से उपजी, २. प्रारब्ध से प्रेरित। यह बालक रामनारायण प्रारब्ध से प्रेरित बीमारियों की जकड़ में है। जब तक यह अपने प्रारब्ध से ग्रसित रहेगा, इसे कोई औषधि फायदा नहीं करेगी। सा इसकी एक मात्र चिकित्सा अध्यात्म है। हाँ औषधियाँ, शरीर के तल पर इसमें सहयोगी साबित हो सकती हैं।

यह कहते हुए गुरुदेव उस बालक के माँ-पिता की ओर मुड़े और उनसे बोले, आप चिन्ता न करें। आपका बेटा रामनारायण आज से मेरा बेटा है। आपने इसके शरीर को जन्म दिया है। मैं इसकी जीवात्मा को नया जन्म दूँगा। उसे पूर्वकृत दुष्कर्मों के प्रभाव से मुक्त करूँगा। गुरुदेव की बातों ने माता-पिता को आश्वस्ति दी। वैसे भी वे एक रात्रि में काफी कुछ परिवर्तन देख चुके थे। गुरुदेव के तप के अंश को पाकर कुछ ही महीनों में न केवल उस किशोर रामनारायण के न केवल शारीरिक रोग दूर हुए, बल्कि उसकी मानसिक चेतना भी निखरी। उसकी बौद्धिक शक्तियों का भारी विकास हुआ। यही नहीं रुचियाँ-प्रवृत्तियाँ भी परिष्कृत हुईं। उसमें गायत्री साधना के प्रति भारी अनुराग जाग पड़ा। उसमें ये सारे परिवर्तन सद्गुरु की कृपा से आए। वही सद्गुरु जो मानवीय जीवन के आध्यात्मिक रहस्यों के मर्मज्ञ थे।

मानवी जीवन आध्यात्मिक रहस्यों से भरा

मानव जीवन के आध्यात्मिक रहस्य अद्भुत हैं। अनुभव कहता है कि ये इतने आश्चर्यों से भरे हैं कि सामान्य बुद्धि इन पर भरोसा करने में स्वयं को असहाय पाती है। जिस देह से हमें जीवन का परिचय मिलता है, उसके बारे में हमारी जानकारी बड़ी आधी-अधूरी है। ऊपर से देखने पर भले ही यह मांस और चमड़े से मढ़ा हुआ हड्डियों का ऐसा ढांचा नजर आता हो, जिसके भीतर रक्त और प्राण चक्कर लगा रहे हैं। लेकिन वैज्ञानिक दृष्टि कहती है कि इसके भीतर अनेकों ऐसी सूक्ष्मताएँ हैं, जिसके बारे में आधुनिकतम शोध भी कुछ कह पाने में असमर्थ है। अन्त:स्रावी ग्रन्थियों की संरचनाएँ, मांस पेशियों में लिपटे तन्त्रिकाओं के गुच्छक, मस्तिष्क की आधे से अधिक कोशिकाओं की निष्क्रिय स्थिति ने तीसरी सहस्राब्दी के महावैज्ञानिकों को हैरान कर रखा है।

इनमें से कइयों का तो यह मानना है कि विज्ञान और वैज्ञानिकता देह की जिस सूक्ष्म संरचनाओं को भेद पाने में अक्षम है, सम्भव है वही आध्यात्मिक रहस्यों के प्रवेश द्वार हो। अभी कुछ सालों पहले तीसरी सहस्राब्दी के प्रवेश की शुभ घड़ी में एक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है 'प्रेडिक्शन फॉर द नेक्स्ट मिलेनियम'। इस ग्रन्थ का सम्पादन डेविड क्रिस्टॉफ एवं टॉड डब्ल्यू निकरसन नाम के विशेषज्ञ वैज्ञानिकों ने किया है। इस ग्रन्थ में दो सौ सत्तर विशिष्ट वैज्ञानिकों के विचार प्रकाशित किए गए हैं। जिनके माध्यम से भविष्य के मानव विकास पर दृष्टि डाली गयी है। संक्षेप में इस पुस्तक का सार कहें तो इसमें यह उम्मीद जतायी गयी है कि भविष्य का मानव अपने जीवन के आध्यात्मिक रहस्यों को वैज्ञानिक रीति से जानने योग्य बन सकेगा।

जहाँ तक अभी वर्तमान की बात है तो न केवल देह के रहस्य अनजाने, बल्कि प्राण के प्रवाह भी अबूझ हैं। नाड़ी संस्थान में बहने वाला प्राण विश्व प्राण से कैसे सम्बन्धित है? इस प्रश्न का कोई सटीक वैज्ञानिक उत्तर नहीं है। जबकि आध्यात्मिकता के भव्य भवन की समूची नींव प्राण विद्या पर ही टिकी

हुई है। प्राण के भेद, उपभेद, इसके भावनाओं एवं विचारों पर प्रभाव इतने अनोखे हैं, जिसकी अनुभूति पर कोई भी जीवन की डोर अपने हाथें में ले सकता है।

प्राण की ही भाँति मन के आध्यात्मिक रहस्यों से मनोवैज्ञानिकों का समुदाय अपरिचित है। मन सोच-विचार के संस्थान से कुछ ज्यादा है। इसी तरह से इसके अवचेतन-अचेतन की परतों की गहराई वर्तमान जीवन से कहीं अधिक है। इसमें असंख्य ऐसे गहरे भेद समाए हैं, जिन्हें केवल आध्यात्मिक साधनाओं से ही उभारा उकेरा और जगाया जा सकता है। ऐसा होने पर यही मन हमें अतीन्द्रिय झलकें दिखाने लगता है। किसी अनजाने झरोखे से भविष्य की झांकी मिलने लगती है। जीवन की परतें बहुतेरी हैं, इनके रहस्य भी असंख्य हैं, पर इन्हें जान वही सकता है, जो सचमुच में जिज्ञासु है। जिसमें स्वस्थ जीवन का सही अर्थ खोजने की लालसा है। जो इस सत्य को समझता है कि आध्यात्मिक चिकित्सा से ही स्वस्थ एवं सफल जीवन के वरदान पाए जा सकते हैं।

ऐसे ही एक सच्चे जिज्ञासु सन् १९५३ में श्री अरविन्द आश्रम में साधना के लिए आए। हालांकि उनका पाण्डिचेरी से पुराना रिश्ता था। वह यहाँ पर फ्रांसीसी औपनिवेशिक सरकार में पहले सेवारत रहे थे। और तभी उनका श्री अरविन्द एवं श्री मां से भाव भरा सम्बन्ध बना था। 'मानव जीवन में अनन्त आध्यात्मिक रहस्य समाए हैं'- इस एक बात ने उनकी गहरी हृततन्त्री को छू लिया। उन्होंने अपने पद से इस्तीफा दे दिया। और गियाना के लिए रवाना हो गए। वहाँ उन्होंने अमेजान के जंगलों में अपनी साहसिक साधना में एक वर्ष बिताया। इसके बाद ब्राजील होते हुए अफ्रीका पहुँचे। इस साहस भरी खोज में उन्हें सद्गुरु के मार्गदर्शन की गहरी आवश्यकता महसूस हुई।

यही अहसास उन्हे श्री मां की शरण में ले आया। अपनी ३० वर्ष की आयु में वे श्री मां के समर्पित शिष्य हो गए। मां ने उन्हें सत्प्रेम कहकर सम्बोधित किया। साधना के लिए साहसिक संकल्प एवं सद्गुरु के प्रति सघन श्रद्धा के सुयोग ने उन्हें नयी शुरूआत दी। वे अपनी डगर पर चल पड़े। इस

डगर पर चलते हुए उनके सामने एक के बाद एक नए-नए आध्यात्मिक रहस्य उजागर होने लगे। सबसे पहले उन्होंने अनुभव किया कि सृष्टि और मानव जीवन का मूल ऊर्जा है। इस ऊर्जा ने अपने निश्चित क्रम में विभिन्न आकार लिए हैं। लोकों की सृष्टि भी इसी तरह से हुई है और मानव जीवन भी इसी भांति अस्तित्व में आया है।

अपनी इस अनुभूति के बाद उन्होंने कहा- आइन्स्टीन का सूत्र $E=mc^2$ वैज्ञानिक ही नहीं आध्यात्मिक सूत्र भी है। आध्यात्मिक अनुभव भी यही कहता है कि पदार्थ और ऊर्जा आपस में रूपान्तरित होते हैं। मानव जीवन भी इसी रूपान्तरण का परिणाम है। जिसे हम देह, प्राण एवं मन, अन्त:करण एवं अन्तरात्मा के संयोग से बना व्यक्तित्व कहते हैं वह दरअसल कुछ विशिष्ट ऊर्जा तरंगों का सुखद संयोग है। कर्म, इच्छा एवं भावना के अनुसार इन ऊर्जा तरंगों में न्यूनता व अधिकता होती रहती है। स्थिति में होने वाले इस परिवर्तन के लिए वर्तमान जीवन के साथ अतीत में किए गए कर्म, इच्छाएँ व भावनाएँ जिम्मेदार होती हैं।

इन्हीं की उपयुक्त एवं अनुपयुक्त स्थिति के अनुसार जीवन में सुखद एवं दु:खद परिवर्तन आते हैं। किसी विशिष्ट ऊर्जा तरंग की न्यूनता जब जीवन में होती है, तो स्वास्थ्य, मानसिक स्थिति, पारिवारिक एवं सामाजिक परिस्थिति में तदानुरूप परिवर्तन आ जाते हैं। इस स्थिति को तप, योग, मंत्रविद्या आदि प्रयासों से ठीक भी किया जा सकता है। सत्प्रेम ने ये सभी प्रयोग एक वैज्ञानिक की भाँति किए। साथ ही उन्होंने अपने निष्कर्षों को लिपिबद्ध भी किया। जो भी मानव जीवन के आध्यात्मिक रहस्यों को विस्तार से जानना चाहते हैं उनके लिए सत्प्रेम की रचनाएँ मार्गदर्शक प्रदीप की भाँति हैं।

प्रयोगिक निष्कर्ष के क्रम में उन्होंने सबसे पहले 'श्री अरविन्द ऑर द एडवेन्चर ऑफ कॉन्शसनेस' लिखा। इसके कुछ ही बाद उन्होंने 'ऑन द वे ऑफ सुपरमैनहुड' प्रकाशित किया। श्री मां के संग साथ की अनुभूतियों को उन्होंने 'मदर्स एजेण्डा' के १३ खण्डों में लिखा। इसके बाद 'द डिवाइन मैटीरियलिज़्म,' 'द न्यू स्पेसीज़, द म्यूटेशन ऑफ डेथ' की एक ग्रन्थ त्रयी

लिखी। इसके बाद 'द माइण्ड ऑफ सेल्स' प्रकाश में आया। सन् १९८९ में अपनी साधना कथा को 'द रिवोल्ट ऑफ अर्थ' नाम से प्रकाशित किया।

सत्प्रेम ने अपना सम्पूर्ण जीवन मानव जीवन के आध्यात्मिक रहस्यों की खोज में बिताया। एक गम्भीर वैज्ञानिक की भाँति उन्होंने अपने शोध निष्कर्ष प्रस्तुत किए। सार रूप में उनके निष्कर्षों के बारे में दो बातें कही जा सकती हैं- १. हम सभी, सृष्टि एवं स्रष्टा के साथ एक दूसरे से गहराई में गुंथे हैं। २. कर्म चक्र ही हम सबके जीवन को प्रवर्तित, परिवर्तित कर रहा है। इन दो बातों के साथ दो बातें और भी हैं- १. इच्छा, संकल्प, साहस एवं श्रद्धा के द्वारा हम सभी अपनी अनन्त शक्तियों को जाग्रत् कर सकते हैं। २. आध्यात्मिक चिकित्सा ही मानव व्यक्तित्व का एक मात्र समाधान है। इसे आस्तिकता के अस्तित्त्व में अनुभव किया जा सकता है।



आध्यात्मिक चिकित्सा का मूल है आस्तिकता

आस्तिकता के अस्तित्त्व को झुठलाना सम्भव नहीं। यह इतना स्पष्ट है जितना कि हम स्वयं, हमारा अपना जीवन। जिन्हें जीवन की सम्पूर्णता का अहसास होता है, वे आस्तिकता की अनुभूति किए बिना नहीं रहते। जो आस्तिकता को नकारते हैं, दरअसल वे जिन्दगी को नकारते हैं, अपने आप को अस्वीकार करते हैं। आस्तिकता का मतलब है, जीवन के होने की सच्ची स्वीकारोक्ति, जीवन और जगत् के सम्बन्धों की सूक्ष्म व सघन अनुभूति। लोक प्रचलन में ईश्वर के प्रति विश्वास या आस्था को आस्तिकता का पर्याय माना जाता है। वैदिक विद्वान 'नास्तिकोवेद निन्दक: ' कहकर वेदज्ञान के प्रति आस्था को आस्तिकता के रूप में परिभाषित करते हैं।

अपने सार मर्म में, प्रचलन में एवं दर्शन में आस्तिकता के बारे में जो भी कुछ कहा गया है, वह एक ही सच के विविध रूप हैं। कथन और परिभाषाएँ अनेक होने पर भी आस्तिकता का सच एक ही है। जब हम आस्तिकता को ईश्वर के प्रति आस्था कहते हैं, तो इसका मतलब इतना ही है कि हमें समष्टि जीवन के प्रति, सर्वव्यापी अस्तित्त्व के प्रति आस्थावान होना चाहिए। यही बात वेदज्ञान के बारे में है। वेद का मतलब चार पोथियाँ नहीं हैं। बल्कि यह सत्यज्ञान एवं सत्य विद्या है। परम्परागत ढंग से सोचें तो प्राचीन ऋषिगणों ने जीवन और जगत् की सूक्ष्मताओं एवं गहनताओं का जो ज्ञान पाया वही वेदों में संकलित है। इसकी अवहेलना या उपेक्षा कर के हम जीवन के समग्र विकास को कभी भी नहीं पा सकते।

बीते सालों में विज्ञान के नाम पर आस्तिकता को झुठलाने की अनेकों कोशिशें की गई। कई तरह के व्यंग, कटाक्ष एवं कटुक्तियाँ उच्चारित की गयीं। बात यहाँ तक बढ़ी कि नास्तिकता को वैज्ञानिकता का पर्याय माना जाने लगा। इस उलटी सोच ने अनेकों उलटे काम कराए। समष्टि जीवन चेतना को नकारने

से स्वार्थपरता व अहंता को भारी बढ़ावा मिला। प्राकृतिक संसाधनों का अन्धाधुंध दोहन हुआ। मानवीय अहंता की चपेट में आकर जीव-जन्तुओं की अनगिनत प्रजातियाँ नष्ट हुई। इसी के साथ प्राकृतिक संकटों के बादल भी घहराए। पर्यावरण संकट, मौसम के संकट, भाँति-भाँति की बीमारियाँ, महामारियाँ, आपदाएँ इन्सानी जिन्दगी को दबोचने की तैयारियाँ करने लगीं। स्वार्थलिप्सा से ग्रसित अहंकारी मानव को मनोरोगों ने भी धर पटका। यह सब हुआ क्यों? किस तरह? और कैसे? इन सवालों के जवाब की ढूँढ खोज में जब वैज्ञानिक जुटे तो उन्होंने अपने प्रयोगों के निष्कर्ष में यही पाया कि समष्टि चेतना के अस्तित्त्व को नकारा नहीं जा सकता।

वैज्ञानिक समुदाय को हार मानकर यह बात स्वीकारनी पड़ी कि जीवन के सभी तन्तु एक दूसरे से गहराई से गुंथे हैं। जीवन और जगत् अपनी गहराइयों में परस्पर जुड़े हैं। इन्हें अलग समझना भारी भूल है। ये वैज्ञानिक निष्कर्ष ही प्रकारान्तर से इकॉलॉजी, इकोसिस्टम, डीप इकॉलॉजी एवं इन्वायरन्मेटल साइकोलॉजी जैसी शब्दावली के रूप में प्रकाशित हुए। इन तथ्यों को यदि अहंकारी हठवादिता को त्यागते हुए स्वीकारें तो इसे आस्तिकता के अस्तित्त्व की स्वीकारोक्ति ही कहेंगे। इस वैज्ञानिक निष्कर्ष के बारे में युगों पूर्व श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया था- 'सूत्रे मणिगणाइव'। यानि कि जीवन के सभी रूप एक परम दिव्य चेतना के सूत्र में मणियों की भाँति गूँथे हैं। उपनिषदों ने इसी सच्चाई को 'अयमात्मा ब्रह्म' कहकर प्रतिपादित किया। इसका मतलब यह है कि यह मेरी अन्तरात्मा ही ब्राह्मी चेतना का विस्तार है। इसे यूँ भी कहा जा सकता है कि अपने जीवन का भाव भरा विस्तार ही यह जगत् है। अपने विस्तार में ही समष्टि है।

उपनिषद् युग की इन अनुभूतियों को कई मनीषी इस वैज्ञानिक युग में भी उपलब्ध कर रहे हैं। और यही वजह है कि उन्होंने आस्तिकता को आध्यात्मिक चिकित्सा के सर्वमान्य सिद्धान्त के रूप में मान्यता दी है। इन्हीं में एक टी.एल. मिशेल का कहना है कि आस्तिकता से इन्कार जीवन चेतना को विखण्डित कर इसे अपंग-अपाहिज बना देता है। इस इन्कार से जीवन में अनेकों नकारात्मक

भाव पैदा होते हैं, जिनके बद्धमूल होने से कई तरह के रोगों के होने की सम्भावना पनपती है। उनका यह भी मत है कि यदि आस्तिकता को सही अर्थों में समझा एवं आत्मसात कर लिया जाय तो निजी जिन्दगी में पनपती हुई कई तरह की मनोग्रन्थियों से छुटकारा पाया जा सकता है।

इस सम्बन्ध में अंग्रेज पत्रकार एवं लेखक पॉल ब्रॉन्टन की अनुभूति बहुत ही मधुर है। कई देशों की यात्रा करने के बाद पॉल ब्रॉन्टन भारत वर्ष आए। अपनी खोजी प्रकृति के कारण यहाँ वे कई महान् विभूतियों से मिले। इनमें से कई सिद्ध और चमत्कारी महापुरुष भी थे। लेकिन ये सभी चमत्कार, अचरज से भरे करतब उनकी जिज्ञासाओं का समाधान न दे पाए। इन सारी भेंट मुलाकातों के बावजूद उनके सवाल अनुत्तरित रहे। मन जस का तस अशान्त रहा। वे अपने आप में आध्यात्मिक चिकित्सा की गहरी आवश्यकता महसूस कर रहे थे। पर यह सम्भव कैसे हो ? अपने सोच-विचार एवं चिन्तन के इन्हीं क्षणों में उन्हें महर्षि रमण का पता चला।

तमिलनाडु के तिरूवन्नामल्लाई स्थान पर साधना करने वाले योगिवर रमण। पवित्र पर्वत अरूणाचलम् में तप कर रहे सन्त रमण महर्षि। इस नाम ने उनके हृदय के तारों में एक मधुर झंकार पैदा कर दी। उन्हें ऐसा लगा जैसे कि महर्षि अपने अदृश्य स्वरों से उन्हें आमंत्रित कर रहे हों। स्वर अनजाने थे, पर पुकार आत्मीय थी। वह चल पड़े। कुछ एक दिनों में अपनी इस यात्रा को पूरा कर वह पवित्र पर्वत अरूणाचलम् के पदभ्रान्त में पहुँच गए। यहाँ पहुँचकर उन्हें पता चला कि महर्षि अभी अपनी गुफा में हैं। हो सकता है कि वे सांझ को नीचे उतरें। पॉल ब्रॉन्टन के लिए यह सांझ की प्रतीक्षा बड़ी कष्टकारी थी। फिर भी उन्होंने धैर्यपूर्वक यह समय गुजारा।

प्रतीक्षा के क्षण बीतने पर महर्षि से उनकी मुलाकात हुई। इस मिलन के प्रथम क्षण में ही उन्होंने अपनी जिज्ञासा उड़ेल दी, आस्तिकता क्या है ? ईश्वर है भी या नहीं ? उनके इस सवालों पर महर्षि हँस पड़े और बोले- पहले यह बताओ कि तुम हो या नहीं और यदि तुम हो तो तुम कौन हो ? उनके सहज प्रश्नों के उत्तर में महर्षि के अटपटे प्रश्न। पॉल ब्रॉन्टन कुछ कह सके, पर महर्षि के व्यक्तित्व की पारदर्शी सच्चाई ने उन्हें गहरे तक छू लिया। महर्षि की बातों में उन्हें सत्य का दर्शन हुआ। और वे मैं कौन हूँ ? इस प्रश्न का समाधान पाने में जुट गए।

पॉल ब्रान्टन की जिज्ञासा तीव्र थी। उनकी भावनाएँ सच्ची थी, फिर उनमें लगन की भी कोई कमी न थी। महर्षि का प्रश्न ही उनका ध्यान बन गया। वह अपने अस्तित्त्व की परत-दर-परत भेदते हुए गहनता में उतरते चले गए। ज्यों-ज्यों वह अपनी गहराई में उतरते-उनका अचरज बढ़ता जाता। परिधि में सीमाएँ थीं, परन्तु केन्द्र में असीमता की अनुभूति थी। मैं की सच्ची पहचान में उन्हें ईश्वर की पहचान भी मिल गयी। आस्तिकता के अस्तित्त्व का बोध भी हो गया। जब वह वापस महर्षि के पास पहुँचे तो उनके होठों पर बड़ी करूणापूर्ण मुस्कान थी। पॉल ब्रॉन्टन को देखकर वह बोले, पुत्र! आस्तिकता आध्यात्मिक चिकित्सा की एक विधि है। जीवन का सारा दुःख इसके अधूरेपन की अनुभूति में है। जब कोई इसे सम्पूर्णता में अनुभव करता है तो उसके सारे सन्ताप शमित हो जाते हैं। अपनी अन्तरात्मा में ही उसे परमात्मा की झांकी मिलती है। स्वयं के जीवन में ही जगत् के विस्तार का बोध होता है। हालांकि इस अनुभूति के लिए नैतिकता की नीति का अनुसरण करना जरूरी है।



नैतिकता की नीति, स्वास्थ्य की उत्तम डगर

नैतिकता की नीति पर चलते हुए स्वास्थ्य के अनूठे वरदान पाए जा सकते हैं। इसकी अवहेलना जिन्दगी में सदैव रोग-शोक, पीड़ा-पतन के अनेकों उपद्रव खड़े करती है। अनैतिक आचरण से बेतहाशा प्राण ऊर्जा की बर्बादी होती है। साथ ही वैचारिक एवं भावनात्मक स्तर पर अनगिनत ग्रन्थियाँ जन्म लेती हैं। इसके चलते शारीरिक स्वास्थ्य के साथ चिन्तन, चरित्र एवं व्यवहार का सारा ताना-बाना गड़बड़ा जाता है। आधुनिकता, स्वच्छन्दता एवं उन्मुक्तता के नाम पर इन दिनों नैतिक वर्जनाओं व मर्यादाओं पर ढेरों सवालिया निशान लगाए जा रहे हैं। इसे पुरातन ढोंग कहकर अस्वीकारा जा रहा है। नयी पीढ़ी इसे रूढ़िवाद कहकर दरकिनार करती चली जा रही है। ऐसा होने और किए जाने के दूषित दुष्परिणाम आज किसी से छुपे नहीं हैं।

हालांकि नयी पीढ़ी के सवाल नैतिकता क्यों? की अनदेखी नहीं की जानी चाहिए। इसका उपयुक्त जवाब देते हुए उन्हें इसके वैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक प्रभावों का बोध कराया जाना चाहिए। प्रश्न कभी भी गलत नहीं होते, गलत होती है प्रश्नों की अवहेलना व उपेक्षा। इनके उत्तर न ढूँढ पाने के किसी भी कारण को वाजिब नहीं ठहराया जा सकता। ध्यान रहे प्रत्येक युग अपने सवालों के हल मांगता है। नयी पीढ़ी अपने नए प्रश्नों के ताजगी भरे समाधान चाहती है। नैतिकता क्यों? यह युग प्रश्न है। इस प्रश्न के माध्यम से नयी पीढ़ी ने नए समाधान की मांग की है। इसे परम्परा की दुहाई देकर टाला नहीं जा सकता। ऐसा करने से नैतिकता की नीति उपेक्षित होगी। और इससे होने वाली हानियाँ बढ़ती जाएँगी।

नैतिकता क्यों? इस प्रश्न का सही उत्तर है- ऊर्जा के संरक्षण एवं ऊर्ध्वगमन हेतु। इस प्रक्रिया में शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य के सभी रहस्य समाए हैं। अनैतिक आचरण से प्राण ऊर्जा के अपव्यय की बात सर्वविदित है। हो भी क्यों नहीं- अनैतिकता से एक ही बात ध्वनित होती है- इन्द्रिय विषयों

का अमर्यादित भोग। स्वार्थलिप्सा, अहंता एवं तृष्णा की अबाधित तुष्टि। फिर इसके लिए कुछ भी क्यों न करना पड़े। प्राण की सम्पदा जब तक है- तब तक यह सारा खेल चलता रहता है। लेकिन इसके चुकते ही जीवन ज्योति बुझने के आसार नजर आने लगते हैं।

इतना ही नहीं, ऐसा करने से जो वर्जनाएँ टूटती हैं, मर्यादाएँ ध्वस्त होती हैं, उससे अपराध बोध की ग्रन्थि पनपे बिना नहीं रहती। वैचारिक एवं भावनात्मक तल पर पनपी हुई ग्रन्थियों से अन्तर्चेतना में अनगिन दरारें पड़ जाती हैं। समूचा व्यक्तित्व विशृंखलित-विखण्डित होने लगता है। दूसरों को इसका पता तब चलता है, जब बाहरी व्यवहार असामान्य हो जाता है। यह सब होता है अनैतिक आचारण की वजह से। अभी हाल में पश्चिमी दुनिया के एक विख्यात मनोवैज्ञानिक रूडोल्फ विल्किन्सन ने इस सम्बन्ध में एक शोध प्रयोग किया है। उन्होंने अपने निष्कर्षों को 'साइकोलॉज़िकल डिसऑडर्स : कॉज़ एण्ड इफेक्ट' नाम से प्रकाशित किया है। इस निष्कर्ष में उन्होंने इस सच्चाई को स्वीकारा है कि नैतिकता की नीति पर आस्था रखने वाले लोग प्राय: मनोरोगों के शिकार नहीं होते। इसके विपरीत अनैतिक जीवन यापन करने वालों को प्राय: अनेक तरह के मनोरोगों के शिकार होते देखा गया है।

समाज मनोविज्ञानी एरिक फ्रॉम ने अपने ग्रन्थ 'मैन फॉर-हिमसेल्फ' में भी यही सच्चाई बयान की है। उनका कहना है कि अनैतिकता मनोरोगों का बीज है। विचारों एवं भावनाओं में इसके अंकुरित होते ही मानसिक संकटों की फसल उगे बिना नहीं रहती। योगिवर भतृहरि ने वैराग्य शतक में इसकी चर्चा में कहा है- 'भोगे रोग भयं' यानि कि भोगों में रोग का भय है। इसे यूं भी कह सकते हैं कि भोग होंगे तो रोग पनपेंगे ही। नैतिक वर्जनाओं की अवहेलना करने वाला निरंकुश भोगवादी रोगों की चपेट में आए बिना नहीं रहता। इनकी चिकित्सा नैतिकता की नीति के सिवा और कुछ भी नहीं।

कभी-कभी तो ये रोग इतने विचित्र होते हैं कि इन्हें महावैद्य भी समझने में विफल रहते हैं। घटना महाभिषक आर्य जीवक के जीवन की है। आर्य जीवक तक्षशिला के स्नातक थे। आयुर्विज्ञान में उन्होंने विशेषज्ञता हासिल की

थी। गरीब-भिक्षुक से लेकर धनपति श्रेष्ठी एवं नरपति सम्राट सभी उनसे स्वास्थ्य का आशीष पाते थे। मरणासन्न रोगी को अपनी चमत्कारी औषधियों से निरोग कर देने में समर्थ थे आर्य जीवक। उनकी औषधियों एवं चिकित्सा के बारे में अनेकों कथाएँ-किंवदन्तियाँ प्रचलित थी। युवराज अभयकुमार एवं सम्राट बिम्बसार भी उनकी प्रशंसा करते नहीं थकते थे।

ऐसे समर्थ चिकित्सक जीवक अपने एक रोगी को लेकर चिन्तित थे। इस रोगी का रोग भी बड़ा विचित्र था। यूं तो वह सभी तरह से स्वस्थ था, बस उसे तकलीफ इतनी थी कि उसकी दायीं आँख नहीं खुलती थी। इस परेशानी को लेकर जीवक अपनी सभी तरह की चिकित्सकीय पड़ताल कर चुके थे। कहीं कोई कमी नजर नहीं आ रही थी। शरीर के सभी अंगों के साथ आँख के सभी अवयव सामान्य थे। आर्य जीवक को समझ में नहीं आ रहा था- क्या करें? हार-थक कर उन्होंने अपनी परेशानी महास्थविर रेवत को कह सुनायी। महास्थविर रेवत भगवान् तथागत के समर्थ शिष्य थे। मानवीय चेतना के सभी रहस्यों को वह भली-भाँति जानते थे।

जीवक की बातों को सुनकर पहले तो उन्होंने एकपल को अपने नेत्र बन्द किए, फिर हल्के से हँस दिए। जीवक उनके मुख से कुछ सुनने के लिए बेचैन थे। उनकी बेचैनी को भांपते हुए महाभिक्षु रेवत ने कहा- महाभिषक जीवक, तुम्हारे रोगी की समस्या शारीरिक नहीं मानसिक है। उसने अपने जीवन में नैतिकता की नीति की अवहेलना की है। इसी वजह से वह मानसिक ग्रन्थि का शिकार हो गया है। उसकी मानसिक परेशानी ही इस तरह शारीरिक विसंगति के रूप में प्रत्यक्ष है। इसका समाधान क्या है आर्य? जीवक बोले। इसे लेकर तुम भगवान् बुद्ध के पास जाओ। प्रभु के प्रेम की ऊष्मा से इसे अपनी मनोग्रन्थि से मुक्ति मिलेगी। और यह ठीक हो जाएगा।

जीवक उसे लेकर भगवान् के पास गए। भगवान् के पास पहुँचते ही उस रोगी युवक ने अपने मन की व्यथा प्रभु को कह सुनायी। अपने अनैतिक कार्यों को प्रभु के सामने प्रकट करते हुए उसने क्षमा की प्रार्थना की। भक्तवत्सल भगवान् ने उसे क्षमादान करते हुए कहा- वत्स नैतिक मर्यादाएँ हमेशा पालन

करनी चाहिए। आयु, वर्ग, योग्यता, देश एवं काल के क्रम में प्रत्येक युग में नैतिकता की नीति बनायी जाती है। इसका आस्थापूर्वक पालन करना चाहिए। नैतिकता की नीति का पालन करने वाला आत्मगौरव से भरा रहता है। जबकि इसकी अवहेलना करने वालों को आत्मग्लानि घेर लेती है।

प्रभु के वचनों ने उस युवक को अपार शान्ति दी। उसे अनायास ही अपनी मनोग्रन्थि से छुटकारा मिल गया। जीवक को तब भारी अचरज हुआ, जब उन्होंने उसकी दायीं आँख को सामान्यतया खुलते हुए देखा। अचरज में पड़े जीवक को सम्बोधित करते हुए भगवान् तथागत ने कहा- आश्चर्य न करो वत्स जीवक, नैतिकता की नीति स्वास्थ्य की उत्तम डगर है। इस पर चलने वाला कभी अस्वस्थ नहीं होता। वह स्वाभाविक रूप से शारीरिक एवं मानसिक रूप से स्वस्थ होता है। जो इसे जानते हैं, वे कर्मसु कौशलम् के रहस्य को जानते हैं।



कर्मफल के सिद्धान्त को समझना भी अनिवार्य

कर्मसु कौशलम् - यानि कि कर्मों में कुशलता की सीख जरूरी है। और यह तभी सम्भव है, जब कर्मफल सिद्धान्त को समझा जाय। इसे समझे बिना आध्यात्मिक चिकित्सा सम्भव नहीं। जीवन की आध्यात्मिक दृष्टि कहती है कि उपयुक्त कारण के बिना कोई कार्य हो नहीं सकता। यदि जिन्दगी में कुछ घटित हो रहा है- तो इसके पीछे किन्हीं कारणों का होना आवश्यक है। फिर ये रोग-शोक पैदा करने वाली घटनाएँ हो अथवा हर्ष-उल्लास के उत्प्रेरक घटनाक्रम। जीवन की किसी घटना को संयोग कहकर टालने की कोशिश करना पूरी तरह से अवैज्ञानिक है। सच तो यह है कि प्रकृति के सम्पूर्ण परिदृश्य में कभी भी-कहीं भी संयोग घटित नहीं होते। प्रत्येक घटना उपयुक्त कारणों के गर्भ से जन्म लेती है। प्रत्येक फल बीज के समुचित विकास का परिणाम होता है।

कई बार ऐसा होता है कि हम किसी घटनाक्रम के लिए जिम्मेदार उपयुक्त कारणों को ढूँढने में असफल रहते हैं। और अपनी इस असफलता को संयोगों के मत्थे मढ़कर छुट्टी पा लेते हैं। लेकिन यह प्रक्रिया सिरे से गलत है। इसे गैर जिम्मेदारी के सिवा और कुछ नहीं कहा जा सकता। प्रत्येक वर्तमान का अतीत होता है, और इसका भविष्य भी। अतीत के गर्भ के बिना कोई वर्तमान अपना अस्तित्त्व नहीं पा सकता। इसी तरह वर्तमान के कार्यों की परिणति भविष्य में अपना सुफल अथवा कुफल प्रकट किए बिना नहीं रहेगी। घटना छोटी हो या बड़ी- प्रत्येक के साथ यही नियम विधान काम करता है। इसे अस्वीकारने अथवा झुठलाने की कोशिश अज्ञान जनित मूढ़ता के सिवा और कुछ नहीं।

कर्मफल विधान की यही सच्चाई हमारी अपनी जिन्दगी के साथ जुड़ी हुई है। हमारा यह जीवन- यह मनुष्य जन्म किन्हीं संयोगों के कारण नहीं उपजा या पनपा है। इसके पीछे हमारे ही द्वारा किए गए कुछ सुनिश्चित कर्म हैं।

हमारी बचपन की किलकारियाँ, किशोरवय की कुहेलिकाएँ, यौवन का पौरूष, बुढ़ापे की लाचारी के जिम्मेदार हमारे अपने सिवा और कोई नहीं। परमात्मा कभी किसी के प्रति भेद-भाव नहीं करते। उनकी कृपा या कोप के पीछे हमारे अपने ही सत्कर्म या दुष्कर्म जिम्मेदार होते हैं। जिन्दगी में सुख आएँ अथवा दुःख उनके कारण केवल हम होते हैं। हमारी जिन्दगी की छोटी या बड़ी, सुखद अथवा दुःखद परिस्थितियों के लिए हमारे सिवा कोई भी दूसरा जिम्मेदार नहीं।

जो जीवन की, प्रकृति की, कर्मफल के नियम की, परमेश्वर के समर्थ विधान की इस सच्चाई को जानते हैं, उन्हीं को विवेकवान कहा जा सकता है। अपने जीवन की जिम्मेदारी स्वीकारने वाले ऐसे कुशल व्यक्ति ही इसे संवारने का सच्चा प्रयत्न कर पाते हैं। अन्यथा और लोग तो अपने गैर जिम्मेदाराना रवैये के कारण अपनी विपन्नताओं का दोष दूसरों के माथे थोपते रहते हैं। इनकी विषम परिस्थितियों के लिए कभी तो भगवान् जिम्मेदार होता है, तो कभी भाग्य, कभी कोई मित्र तो कभी कोई शत्रु। हां जब कोई सुखद परिस्थितियाँ इनके जीवन में आती हैं, तो इनकी अहंता का पारा यकायक चढ़ जाता है। और इसका श्रेय लेने में ये किसी भी तरह से नहीं चूकते। ऐसे लोगों का जीवन हमेशा ही विडम्बना भरी कहानी बना रहता है।

जिन्हें जिन्दगी की आध्यात्मिक चिकित्सा में रुचि या रस है, उनसे समझदारी की अपेक्षा है। इसके लिए वे पूरी ईमानदारी से अपनी जिन्दगी की जिम्मेदारी को स्वीकारें और बहादुरी से इसे निभाएँ। इस रीति को निभाए बगैर महानतम आध्यात्मिक चिकित्सक भी हमारी कारगर चिकित्सा न कर पाएगा। युगऋषि गुरुदेव का कहना था कि कर्मफल विधान आध्यात्मिक चिकित्सा का सर्वमान्य सिद्धान्त है। इसे समझे और स्वीकारे बिना किसी की कोई भी मदद सम्भव नहीं।

इस सम्बन्ध में एक बड़ी मार्मिक घटना है। महाराष्ट्र का कोई व्यक्ति उनसे मिलने आया। उसकी आयु यही कोई ३०-३५ वर्ष रही होगी। पर जिन्दगी की मार ने उसे असमय बूढ़ा कर दिया था। रुखे-उलझे सफेद बाल,

हल्की पीली सी धंसी आँखें। चेहरे पर विषाद की घनी छाया। दुबली-पतली कद-काठी, सांवला रंग-रूप। बड़ी आशा और उम्मीद लेकर वह गुरुदेव के पास आया था। आते ही उसने प्रणाम करते हुए अपना नाम बताया उदयवीर घोरपड़े। साथ ही यह कहा कि वह महाराष्ट्र के जलगांव के पास के किसी गांव का रहने वाला है। इतना सा परिचय देने के बाद वह फफक-फफक कर रो पड़ा। और रोते हुए उसने अपनी विपद् कथा कह सुनायी।

सचमुच ही उसकी कहानी करुणा से भरी थी। लम्बी बीमारी से पत्नी की मृत्यु, डकैती में घर की सारी सम्पत्ति का लुट जाना और साथ ही सभी स्वजनों की नृशंस हत्या। वह स्वयं तो इसलिए बच गया क्योंकि कहीं काम से बाहर गया था। अब निर्धनता और प्रियजनों के विछोह ने उसे अर्ध विक्षिप्त बना दिया था। जीवन उसके लिए अर्थहीन था और मौत ने उसे अस्वीकार कर दिया था। अपनी कहानी सुनाते हुए उसने एक रट लगा रखी थी कि गुरुजी! मेरे साथ ऐसा क्यों हुआ। मैंने तो किसी का भी कुछ नहीं बिगाड़ा था। भगवान ऐसा अन्यायी क्यों है? पूज्य गुरुदेव ने बड़े प्यार से उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा- बेटा! अभी तेरा मन ठीक नहीं है। मैं तुझे कुछ बताऊँगा भी तो तुझे समझ नहीं आएगा।

अभी तो मैं तुझे एक कहानी सुनाता हूँ। यह कहानी उस समय जन्मी जब भगवान श्रीकृष्ण पाण्डवों के दूत बनकर कौरव सभा में गए थे। और वहाँ उन्होंने उद्दण्ड दुर्योधन को डपटते हुए अपना विराट् रूप दिखाया। इस दिव्य रूप को भीष्म, विदुर जैसे भक्तों ने देखा। ऐसे में धृतराष्ट्र ने भी कुछ समय के लिए आँखों का वरदान माँगा, ताकि वह भी भगवान् की दिव्य छवि निहार सके। कृपालु प्रभु ने धृतराष्ट्र की प्रार्थना स्वीकार की। तभी धृतराष्ट्र ने कहा- भगवन् आप कर्मफल सिद्धान्त को जीवन की अनिवार्य सच्चाई मानते हैं। सर्वेश्वर मैं यह जानना चाहता हूँ, किन कर्मों के परिणाम स्वरूप मैं अन्धा हूँ।

भगवान ने धृतराष्ट्र की बात सुनकर कहा, धृतराष्ट्र इस सच्चाई को जानने के लिए मुझे तुम्हारे पिछले जन्मों को देखना पड़ेगा। भगवान के इन वचनों को सुनकर धृतराष्ट्र विगलित स्वर में बोले- कृपा करें प्रभु, आपके लिए भला क्या

असम्भव है। कुरु सम्राट के इस कथन के साथ भगवान योगस्थ हो गए। और कहने लगे- धृतराष्ट्र मैं देख रहा हूँ कि पिछले तीन जन्मों में तुमने ऐसा कोई पाप नहीं किया है, जिसकी वजह से तुम्हें अन्धा होना पड़े? श्रीकृष्ण के इस कथन को सुनकर धृतराष्ट्र बोले- तब तो कर्मफल विधान मिथ्या सिद्ध हुआ प्रभु! नहीं धृतराष्ट्र अभी इतना शीघ्र किसी निष्कर्ष पर न पहुँचो और भगवान् धृतराष्ट्र के विगत जन्मों का हाल बताने लगे। एक-एक करके पैंतीस जन्म बीत गए।

सुनने वाले चकित थे। धृतराष्ट्र का समाधान नहीं हो पा रहा था। तभी प्रभु बोले- धृतराष्ट्र मैं इस समय तुम्हारे १०८ वें जन्म को देख रहा हूँ। मैं देख रहा हूँ- एक युवक खेल-खेल में पेड़ पर लगे चिड़ियों के घोंसले उठा रहा है। और देखते-देखते उसने चिड़ियों के सभी बच्चों की आँखें फोड़ दीं। ध्यान से सुनो धृतराष्ट्र, यह युवक और कोई नहीं तुम ही हो। विगत जन्मों में तुम्हारे पुण्य कर्मों की अधिकता के कारण यह पाप उदय न हो सका। इस बार पुण्य क्षीण होने के कारण इस अशुभ कर्म का उदय हुआ है।

इस कथा को सुनाते हुए परम पूज्य गुरुदेव ने उस युवक के माथे पर भौहों के बीच हल्का सा दबाव दिया। और वह निस्पन्द होकर किसी अदृश्य लोक में प्रविष्ट हो गया। कुछ मिनटों में उसने पता नहीं क्या देख लिया। जब वापस उसकी चेतना लौटी तो वह शान्त था। गुरुदेव उससे बोले- समझ गए न बेटा। वह बोला- हाँ गुरुजी मेरे ही कर्म हैं। यह सब मेरे ही दुष्कर्मों का फल है। कोई बात नहीं बेटा, जब जागो तभी सबेरा। अब से तुम अपने जीवन को संवारों। मैं तुम्हारा साथ दूँगा। क्या करना होगा, उस युवक ने पूछा। चित्त के संस्कारों को जानो और इनका परिष्कार करो। गुरुदेव के इस कथन ने उसके जीवन में नयी राह खोल दी।



चित्त के संस्कारों की चिकित्सा

चित्त के संस्कार कर्मबीज हैं। इन्हीं के अनुरूप व्यक्ति की मन:स्थिति एवं परिस्थिति का निर्माण होता है। जन्म और जीवन के अनगिन रहस्य इन संस्कारों में ही समाए हैं। जिस क्रम में संस्कार जाग्रत् होते हैं, कर्म बीज अंकुरित होते हैं, उसी क्रम में मन:स्थिति परिवर्तित होती है, परिस्थितियों में नए मोड़ आते हैं। जन्म के समय की परिस्थितियाँ, माता-पिता का चयन, गरीबी-अमीरी की स्थिति जीवात्मा के संस्कारों के अनुरूप बनती है। कालक्रम में इनकी नयी-नयी परतें खुलती हैं। अपनी परिपक्वता के क्रम में कर्मबीजों का अंकुरण होता है और जीवन में परिवर्तन आते रहते हैं। किसी भी आध्यात्मिक चिकित्सक के लिए इन संस्कारों के विज्ञान को जानना निहायत जरूरी है। यह इतना आवश्यक है कि इसके बिना किसी की आध्यात्मिक चिकित्सा सम्भव ही नहीं हो सकती।

किसी भी व्यक्ति का परिचय उसके व्यवहार से मिलता है। इसी आधार पर उसके गुण-दोष देखे-जाने और आँके जाते हैं। हालांकि व्यवहार के प्रेरक विचार होते हैं और विचारों की प्रेरक भावनाएँ होती हैं। और इन विचारों और भावनाओं का स्वरूप व्यक्ति के संस्कार तय करते हैं। इस गहराई तक कम ही लोगों का ध्यान जाता है। सामान्य जन तो क्य विशेषज्ञों से भी यह चूक हो जाती है। किसी के जीवन का ऑकलन करते समय प्राय: व्यवहार एवं विचारों तक ही अपने को समेट लिया जाता है। मनोवैज्ञानिकों की सीमाएँ यहीं समाप्त हो जाती हैं। परन्तु अध्यात्म विज्ञानी अपने ऑकलन संस्कारों के आधार पर करते हैं। क्योंकि आध्यात्मिक चिकित्सा के आधारभूत ढाँचे का आधार यही है।

ध्यान रहे, व्यक्ति की इन अतल गहराइयों तक प्रवेश भी वही कर पाते हैं, जिनके पास आध्यात्मिक दृष्टि एवं शक्ति है। आध्यात्मिक ऊर्जा की प्रबलता

के बिना यह सब सम्भव नहीं हो पाता। कैसे अनुभव करें चित्त के संस्कारों एवं इनसे होने वाले परिवर्तन को? तो इसका उत्तर अपने निजी जीवन की परिधि एवं परिदृश्य में खोजा जा सकता है। विचार करें कि अपने बचपन की चाहतें और रूचियाँ क्या थीं? आकांक्षाएँ और अरमान क्या थे? परिस्थितियाँ क्या थीं? इन सवालों की गहराई में उतरेंगे तो यह पाएँगे कि परिस्थितियों का ताना-बाना प्राय: मन:स्थिति के अनुरूप ही बुना हुआ था। मन की मूलवृत्तियों के अनुरूप ही परिस्थितियों का शृंगार हुआ था। और ये मूल वृत्तियाँ हमारे अपने संस्कारों के अनुरूप ही थीं।

अब यदि क्रमिक रूप में ५-५ या १०-१० वर्षों के अन्तराल का लेखा-जोखा करें तो हमें विस्मयजनक एवं आश्चर्यचकित करने वाले नए-नए मोड़ अपने जीवन में देखने को मिलेंगे। यह अचरज हमें कितना ही क्यों न चौंकाए, पर यह हमारे जीवन की अनुभूत सच्चाई है। थोड़ा बारीकी से देखें तो इन पंक्तियों के पाठक अनुभव करेंगे कि उनके जीवन में पाँच या दस सालों के अन्तराल में कुछ ऐसा होता गया, जिसकी उन्होंने कल्पना भी नहीं की थी। मन की कल्पनाएँ बदली, अरमान, आकांक्षाएँ बदली, चाहत एवं वृत्तियों में परिवर्तन हुए, साथ ही परिस्थितियों में नए-नए घटनाक्रमों का उदय हुआ। कई पराए अपने हुए और कई अपने परायापन जताकर विरोधी हो गए। आर्थिक-सामाजिक पहलुओं में भी नए रंग उभरे।

यह सब संयोग की वजह से नहीं, संस्कारों की वजह से हुआ। नए संस्करों के जागरण एवं नए कर्म बीजों के अंकुरण के कारण हमारे जीवन के नए-नए शृंगार होते गए। यह अलग बात है कि इन परिवर्तनों में कई परिवर्तन हमारे लिए दुखद साबित हुए तो कई ने हमें सुखद अनुभूतियाँ दी। भरोसा करें, यहाँ जो कहा जा रहा है वह आध्यात्मिक ज्ञान का सच है। कोई भी सुपात्र सत्पात्र इसे अनुभव कर सकता है। यदि आपको इस पर भरोसा हो रहा है तो इस सच्चाई पर भी यकीन करें कि संस्कारों की तह तक पहुँच कर, इनका उत्खनन करके दु:खद संस्कारों से छुटकारा पाया जा सकता है। और सुखद संस्कारों को प्रबल बनाया जा सकता है। यानि कि आध्यात्मिक प्रयोगों की

सहायता से बुरी मनःस्थिति एवं परिस्थिति से छुटकारा पाया जा सकता है।

विश्वास करें यह एक प्रायोगिक सच है। अनेकों ने अनेक तरह से इसे अपने जीवन में खरा पाया है। बस इसके लिए आपको किसी आध्यात्मिक चिकित्सक का संग-साथ चाहिए। उसकी सहायता से जीवन में नए रंग भरे जा सकते हैं। ऐसा होने की अनुभूति तो अनेकों की है, पर हम यहाँ केवल एक का उल्लेख करना चाहेंगे। जिसकी वजह से एक भटकता हुआ आवारा किशोर महान् क्रान्तिकारी इतिहास पुरुष बन गया। हाँ यह सच्चाई पं. रामप्रसाद बिस्मिल के जीवन की है। 'सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है'- का प्रेरक स्वर देने वाले बिस्मिल किशोर वय में कुसंग एवं कुटेव के कुचक्र में फंस गए थे। गलत लोगों के गलत साथ ने उनमें अनेकों गलत आदतें डाल दी। स्थिति कुछ ऐसी बिगड़ी कि जैसा उनका व्यक्तित्व ही मुरझा गया।

इसी दौर में उनके कुछ शुभ संस्कार जगे, कुछ पुण्य बीज अंकुरित हुए और उनकी मुलाकात एक महापुरुष से हुई। ये महापुरुष संन्यासी थे और नाम था स्वामी सोमदेव। इनकी साधना अलौकिक थी। इनका तप बल प्रबल था। वे पं. रामप्रसाद को देखते ही पहचान गए। उन्होंने अपने परिचित जनों से कहा कि यह किशोर एक विशिष्ट आत्मा है। इसका जन्म भारत माता की सेवा के लिए हुआ है। पर विडम्बना यह है कि इसके उच्चकोटि के संस्कार अभी जाग्रत् नहीं हुए। और किसी जन्म के बुरे संस्कारों की जागृति ने इसे भ्रमित कर रखा है। क्या होगा महाराज इसका? इन संन्यासी महात्मा के कुछ शिष्यों ने इनसे पूछा। वे महापुरुष पहले तो मुस्कराए फिर हंस पड़े और बोले- इस बालक की आध्यात्मिक चिकित्सा करनी पड़ेगी। और इसे मैं स्वयं सम्पन्न करूँगा। बस तुम लोग इसे मेरे समीप ले आओ।

ईश्वरीय प्रेरणा से यह सुयोग बना। पं. रामप्रसाद इन महान् योगी के सम्पर्क में आए। इस पवित्र संसर्ग में पं. रामप्रसाद का जीवन बदलता चला गया। वह यूं ही अचानक एवं अनायास नहीं हो गया। दरअसल उन महान् संन्यासी ने अपनी आध्यात्मिकऊर्जा का प्रयोग करके इनके बुरे संस्कारों वाली परत हटानी शुरू की। एक तरह से वह अदृश्य ढंग से अपनी आध्यात्मिक दृष्टि

एवं शक्ति का प्रयोग करते रहे। तो दूसरी ओर दृश्य रूप में उन्होंने रामप्रसाद को गायत्री महामंत्र का उपदेश दिया। उन्हें श्रीमद्भगवद्गीता के पाठ के लिए तैयार किया। दिन मास वर्ष के क्रम में युवक रामप्रसाद में नया निखार आया।

उनकी अन्तर्चेना में पवित्र संस्कार जाग्रत् होने लगे। पवित्र संस्करों ने भावनाओं को पवित्र बनाया, तदानुरूप विचारों का ताना-बाना बुना गया। और एक नये व्यक्तित्व का उदय हुआ। एक भ्रमित-भटके हुए किशोर के अन्तराल में भारत माता के महान् सपूत पं. रामप्रसाद बिस्मिल का जन्म हुआ। इस नव जन्म ने उनके जीवन में सर्वथा नए रंग भर दिए। यह सब चित्त के संस्कारों की आध्यात्मिक चिकित्सा के बलबूते सम्भव हुआ। जिसने पूर्वजन्म के शुभ संस्कारों को जाग्रत् कर एक नया इतिहास रचा।



पूर्वजन्म के दुष्कर्मों का परिमार्जन जरूरी

पूर्वजन्म में वर्तमान जीवन के रहस्यों की जड़ें हैं। इन्हें खोदे बिना, इन्हें समझे बिना जिन्दगी की सूक्ष्मताओं का भेद नहीं पाया जा सकता। अचेतन के अविष्कार को आधुनिक मनोविज्ञान अपनी सबसे बड़ी उपलब्धि मानता है। मनोवैज्ञानिक अनुसन्धानों के सारे दरो-दीवार इसी नींव पर टिके हैं। किसी भी पीड़ा-परेशानी का कारण मनोचिकित्सक अचेतन में ढूँढने की कोशिश करते हैं। आज के वैज्ञानिक समुदाय में इस सच को स्वीकारा जाता है कि जिन्दगी की समस्याओं की जड़ें इन्सान के मन में है। अनगिनत शोध प्रयासों ने इस तथ्य को प्रामाणिकता दी है कि रोग शारीरिक हों या मानसिक, इनके बीज इन्सान के अचेतन मन की परतों में छुपे होते हैं। इस सर्वमान्य स्वीकारोक्ति को विशेषज्ञों ने कई तरह से जांच-परखकर सही पाया है। इसमें न कोई मतभेद है और न मनभेद।

हां, सवाल इसका जरूर है कि अचेतन मन क्या है ? तो मनोवैज्ञानिक इसके उत्तर में कहते हैं कि यह और कुछ नहीं बस हमारा बीता हुआ कल है। बीते हुए कल में हमने जो कुछ किया, सोचा अथवा जो भावानुभूतियाँ पायी उसकी गहरी लकीरें हमारे अचेतन मन में अभी भी बनी हैं। इसे यूं भी कह सकते हैं कि हमारे बीते हुए कल की अनुभूतियाँ ही अचेतन का निर्माण करती हैं। यदि इन अनुभूतियों में कटुता, तिक्तता या कसक बाकी रही है, तो वह रोग-शोक के रूप में प्रकट होती है। इसी से अनेकों दु:खद घटनाक्रम जन्म लेते हैं। यदि अचेतन की स्थिति सुधरी-संवरी है, तो जीवन के सुखमय होने के आसार भी बनते हैं।

प्राय: सभी मनोचिकित्सक अचेतन की इस परिभाषा एवं प्रभाव से सहमत हैं। किन्तु आध्यात्मिक चिकित्सक इस सत्य को अपेक्षाकृत व्यापक परिदृश्य में देखते हैं। इनका कहना है कि बीते हुए कल की सीमाएँ केवल वर्तमान के क्षण से लेकर बचपन तक सिमटी नहीं हैं। इसके दायरे काफी बड़े

हैं। ये इतने ज्यादा व्यापक हैं कि इसमें हमारे पूर्वजन्म की अनुभूतियाँ भी समायी हुई हैं। पूर्वजीवन में हमारे द्वारा किए गए कर्म, गहनता से सोचे गए विचार एवं प्रगाढ़ता से पोषित हुई भावनाएँ भी अपनी स्थिति के अनुरूप वर्तमान जीवन में सुखद या दुःखद स्थिति को जन्म देती हैं।

आध्यात्मिक चिकित्सा के इस सिद्धान्त को कई आधुनिक मनोचिकित्सकों ने स्वीकारा है। इन्हीं में से एक डॉ. ब्रायन वीज़ हैं। जो अमेरिका में फ्लोरिडा क्षेत्र के अन्तर्गत आने वाले मियामी शहर में मनोचिकित्सा कर रहे हैं। डॉ. वीज़ ने अपने चिकित्सा कार्य में कई बार पाया कि रोगी के दुःख द्वन्द्व के कारण उसके व्यक्तित्व की अतल गहराइयों में है। पहले तो उन्होंने प्रचलित विधियों का प्रयोग करके तह तक जाने की कोशिश की। पर उन्हें कोई खास सफलता न लगी। हां उन्हें इतना जरूर अहसास हुआ कि अभी ज्यादा गहरे उत्खनन की जरूरत है। और उन्होंने नयी विधियों की खोज करके अपने रोगी के पिछले जीवन में झांकने की कोशिश की। इस कोशिश ने उन्हें न केवल सफल बनाया, बल्कि इस तरह वे पूर्वजन्म की वैज्ञानिकता को जानने में सफल रहे।

डॉ. वीज़ ने अपने इन प्रायोगिक निष्कर्षों को अलग-अलग ढंग से पुस्तकों में प्रकाशित किया। इन पुस्तकों में 'मैसेजेस फ्राम दि मास्टर्स, मैनी लाइव्स, मैनी मास्टर्स, ओनली लव इज़ रियल एवं थ्रू टाइम इन्टू हीलिंग' मुख्य है। उनके इस वैज्ञानिक रचना से संसार में आध्यात्मिक चिकित्सा की हकीकत जानी-समझी एवं पढ़ी जा सकती है। साथ ही यह भी अनुभव किया जा सकता है कि किसी भी रोगी की सफल आध्यात्मिक चिकित्सा के लिए उसके पूर्वजन्म के ज्ञान का क्या महत्त्व है। डॉ. वीज़ के ये प्रायोगिक निष्कर्ष न केवल सामान्य पाठक को अभिभूत करते हैं, बल्कि इन सत्यों की जानकारी ने उन्हें स्वयं को अभिभूत कर दिया है। इसी का सुखद परिणाम है कि मनोचिकित्सक के रूप में अपने व्यवसाय का प्रारम्भ करने वाले डॉ. ब्रायन वीज़ आज स्वयं को आध्यात्मिक चिकित्सक कहलाने में गर्व महसूस करते हैं।

डॉ. वीज़ के इस सच को भगवद्भूमि भारत ने युग-युगान्तर से अनुभव किया है। योगेश्वर श्रीकृष्ण ने भगवद्गीता में इस सत्य को बताते हुए कहा है-

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप॥

हे परंतप अर्जुन! मेरे और तेरे बहुत से जन्म हो चुके हैं। उन सबको तू नहीं जानता, किन्तु मैं जानता हूँ।

यह जानना किसी आध्यात्मिक चिकित्सक की योग्यता को प्रामाणित करता है। यदि किसी में यह योग्यता नहीं है तो उसकी आध्यात्मिक चिकित्सा भी उसी की तरह अधूरी एवं अप्रामाणिक रहेगी।

इस युग के महानतम् आध्यात्मिक चिकित्सक ब्रह्मर्षि परम पूज्य गुरुदेव इस प्रक्रिया में सिद्धहस्त थे। उन्होंन असंख्य जनों के पूर्वजन्म को जानकर उनके जीवन को पीड़ा, परेशानी से मुक्त किया। ऐसी ही एक घटना- शिव नारायण कुलकर्णी के जीवन की है। उन दिनों श्री कुलकर्णी की युवावस्था थी। और अभी हाल में ही उन्होंने एम.एस-सी. (भौतिक विज्ञान) में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण किया था। उनके स्वजन उन्हें शोध अध्ययन के लिए अमेरिका भेजना चाहते थे। पासपोर्ट, वीज़ा आदि की सारी तैयारियाँ हो चुकी थी। खर्च का भी इन्तजाम हो गया था। लेकिन तभी उन्हें पागलपन का दौरा पड़ा। स्वजनों ने मेडिकल कॉलेज के साइकिएट्री विभाग में उनका इलाज कराया। पर स्थिति सुधरी नहीं। चिकित्सक एवं चिकित्सालय बदलते गए और स्थिति बिगड़ती गयी।

हारे को हरिनाम, मुसीबत पड़े तो श्रीराम। कहीं से ढूँढ खोजकर वे गुरुदेव के पास आ गए। गुरुदेव ने उनको बड़े ध्यान से देखा और उनकी आँखें छलक आयी। युवक श्री शिवनारायण कुलकर्णी के माता-पिता ने जानना चाहा, कि उनके इस लड़के का क्या होगा। घर-परिवार में सबसे होनहार बालक इतने बुरे पागलपन के चपेट में आ गया है। उन चिन्तित माता-पिता की ओर देखते हुए गुरुदेव बोले- बेटा तुम्हारे पुत्र की समस्या गम्भीर है और इसका ठीक होना लगभग असम्भव है। ऐसा करो कि तुम लोग अभी शान्तिकुञ्ज में ठहरो। और मेरे पास कल आना। तब कुछ समाधान सोचेंगे।

बड़ी से बड़ी आपदाओं को चुटकियों में हलकर देने वाले गुरुदेव ऐसा

क्यों कह रहे हैं? यह राज पास बैठे हुए कार्यकर्त्ता को समझ में न आया। उसने जिज्ञासावश पूछा, गुरुदेव इस युवक के जीवन में कोई गम्भीर बात है क्या? इस प्रश्न पर पहले तो गुरुदेव मौन रहे फिर बोले- बेटा! इसने पूर्वजन्म में बहुत ही बड़ा अपराध किया है, उसी का फल इस रूप में प्रकट हो रहा है। इसे कोई भी ठीक नहीं कर सकता। तब क्या होगा? देखेंगे, कहकर वह मौन साध गए।

दूसरे दिन दोपहर में वह युवक और उसके माता-पिता फिर से आए। यह कार्यकर्त्ता भी काम से पूज्यवर के पास पहुँचा था। गुरुदेव ने उसके माता-पिता को सम्बोधित करते हुए कहा, हम तुम्हें निराश नहीं करना चाहते। इस लड़के की आयु भी अभी कम है। हम इसे ठीक तो कर देंगे, पर इसमें समय लगेगा। स्थिति कठिन तो जरूर है, पर हम स्वयं इसके द्वारा पूर्वजन्म के किए गए महापाप का प्रायश्चित्त करेंगे। साथ ही अपनी आध्यात्मिक शक्ति से इसके मन-मस्तिष्क की शल्यचिकित्सा करेंगे। यह प्रक्रिया कई चरणों में चलेगी। और इसमें लगभग दो-ढाई साल लगेंगे।

गुरुदेव की इन बातों ने युवक के माता-पिता को आश्वस्त कर दिया। बीच-बीच में वे गुरुदेव से मिलने शान्तिकुञ्ज आते रहे। उस युवक में समय के साथ परिवर्तन प्रारम्भ हो गए। और समय के साथ वह ठीक भी हो गया। पूज्यवर की आध्यात्मिक चिकित्सा के विज्ञान को उस युवक के साथ उसके माता-पिता ने भी अनुभव किया। साथ ही यह भी जान सके कि पूर्वजन्म में हुए दुष्कर्म और उससे उपजे रोग-शोक का परिमार्जन आध्यात्मिक ढंग से ही सम्भव है। इसी विधि से प्रारब्ध के सुयोग-दुर्योग बदले जा सकते हैं।



प्रारब्ध का स्वरूप एवं चिकित्सा में स्थान

प्रारब्ध के सुयोग-दुर्योग जीवन में सुखद-दुःखद परिस्थितियों की सृष्टि करते हैं। प्रारब्ध का सुयोग उदय होने से अनायास ही सुख-सौभाग्य एवं स्वास्थ्य की घटाएँ छा जाती है। जबकि कहीं यदि प्रारब्ध का दुर्योग उदय हुआ तो जीवन में दुःख-दुर्भाग्य एवं रोग-शोक की घटाएँ घिरने लगती हैं। मानव जीवन में प्रारब्ध का यह सिद्धान्त भाग्यवादी कायरता नहीं बल्कि आध्यात्मिक दृष्टि की सूक्ष्मता व पारदर्शिता है। यह ऐसा सच है जिसे हर पल-हर क्षण सभी अनुभव करते हैं। सुख-दुःख के हिंडोले में झूलते हुए इनमें से कुछ इस सच्चाई को पारम्परिक रूप से स्वीकारते हैं। जबकि कई अपनी बुद्धिवादी अहमन्यता के कारण इसे सिरे से नकार देते हैं। थोड़े से तपस्वी एवं विवेकी लोगों को आध्यात्मिक दृष्टि प्राप्त होती है, वे इस सूक्ष्म सत्य को साफ-साफ देख पाते हैं। इसे पूरी पारदर्शिता के साथ अनुभव करते हैं।

जिन्हें यह अनुभूति होती है और हो रही है वे इस सम्बन्ध में सभी के सभी तरह के सवालों का जवाब देने में सक्षम हैं। ज्यादातर जनों की जिज्ञासा होती है- प्रारब्ध है क्या? तो इसका सरल समाधान है- प्रारब्ध का अर्थ है- परिपक्व कर्म। हमारे पूर्वकृत कर्मों में जो जब जिस समय परिपक्व हो जाते हैं, उन्हें प्रारब्ध की संज्ञा मिल जाती है। यह सिलसिला कालक्रम के अनुरूप चलता रहता है। इसमें वर्ष भी लगते हैं और जन्म भी। कई बार क्रिया भाव में और विचारों का इतना तीव्रतम संयोग होता है कि वे तुरन्त, प्रारब्ध कर्म का रूप ले लेते हैं। और अपना फल प्रकट करने में सक्षम सिद्ध होते हैं। ये पंक्तियाँ अपने पाठकों को थोड़ा अचरज में डाल सकती है। किन्तु यह सभी तर्कों से परे अनुभूत सत्य है।

आध्यात्मिक चिकित्सा में प्रारब्ध के स्वरूप एवं सिद्धान्त को समझना बहुत महत्त्वपूर्ण है। इस क्रम में सबसे प्रथम बिन्दु यह है कि हमारे द्वारा किया जाने वाला प्रत्येक कर्म अविनाशी है। यह अच्छा हो या बुरा समयानुसार

परिपक्क होकर प्रारब्ध में बदले बिना नहीं रहेगा। और प्रारब्ध का अर्थ ही है वह कर्म जिसका फल भोगने से हम बच नहीं सकते। इसे सामान्य जीवन क्रम के बैंक और उसके फिक्स डिपॉजिट के उदाहरण से समझा जा सकता है। हम सभी जानते हैं कि बैंक में अपने धन को निश्चित समय अवधि में जमा करने की प्रथा है। इस प्रक्रिया में अलग-अलग जमा पूंजी एक निश्चित अवधि में डेढ़ गुनी-दो गुनी हो जाती है। इस प्रकार बैंक में हम अपने ढाई हजार रुपये जमा करके पांच साल में पांच हजार पाने के हकदार हो जाते हैं।

बस यही प्रक्रिया कर्मबीजों की है- जो जीवन चेतना की धरती पर अंकुरित, पल्लवित और पुष्पित होकर अपना फल प्रकट करने की स्थिति में आते रहते हैं। कौन कर्म किस समय फल बनकर सामने आएगा? इसमें कई कारक क्रियाशील होते हैं। उदाहरण के लिए सबसे पहले कर्म की तीव्रता क्या है? कितनी है? ध्यान देने की बात यह है कि प्रत्येक क्रिया कर्म नहीं होती। जो हम अनजाने में करते हैं, जिसमें हमारी इच्छा या संकल्प का योग नहीं होता, उसे कर्म नहीं कहा जा सकता। इसका कोई सुफल या कुफल भी नहीं होगा। इसके विपरीत जिस क्रिया में हमारी इच्छा एवं संकल्प का सुयोग जुड़ता है, वह कर्म का रूप धारण करती है। और इसका कोई न कोई फल अवश्य होता है।

हमारे कर्म की तीव्रता का आधार होते हैं भाव एवं विचार। क्योंकि इन्हीं से इच्छा एवं संकल्प की सृष्टि होती है। इच्छा और संकल्प के तीव्र व सबल होने पर कर्म भी प्रबल हो जाते हैं। ऐसे प्रबल कर्म अल्प समयावधि में प्रारब्ध में परिवर्तित होकर अपना फल देने की स्थिति में आ जाते हैं। जबकि सामान्य इच्छा के साथ की जाने वाली क्रियाएँ कर्म तो बनती है, परन्तु प्रारब्ध के रूप में इनका रूपान्तरण काफी लम्बे समय बाद होता है। कभी-कभी तो इनके प्रारब्ध बनने में जन्म एवं जीवन भी लग जाते हैं। यहाँ जो बताया जा रहा है वह सुपरीक्षित सत्य है। इसे बार-बार अनुभव किया गया है।

इस सिद्धान्त के अनुसार आध्यात्मिक कर्म, तप आदि साधनात्मक प्रयोग तीव्रतम कर्म माने गए हैं। क्योंकि इनमें भावों एवं विचारों की तीव्रता अधिकतम होती है। इच्छा और संकल्प प्रबलतम होते हैं। ऐसे कर्मों का जब सविधि

अनुष्ठान किया जाता है, तो वे तुरन्त ही प्रारब्ध में परिवर्तित होकर अपने फल को प्रकट कर देते हैं। कोई भी अवरोध इसमें आड़े नहीं आता। जिनके कठिन तप प्रयोगों का अभ्यास है, उनके लिए यह नित्य प्रति का अनुभव है। वे अपने दैनिक जीवन में इस सत्य का साक्षात्कार करते रहते हैं।

प्रारब्ध के सिद्धान्त एवं विज्ञान में एक महत्त्वपूर्ण सच और भी है। वह यह कि कर्म बीज से प्रारब्ध बनने की प्रक्रिया यदि अभी पूरी नहीं हो सकी है तो उसे किसी विशेष आध्यात्मिक प्रयोग से कम किया जा सकता है अथवा टाला जा सकता है। परन्तु यदि यह प्रक्रिया पूरी हो गयी है और प्रारब्ध ने अपना पूर्ण आकार ले लिया है तो फिर यह अटल और अनिवार्य हो जाता है। फिर इसमें थोड़ा बहुत परिवर्तन भले कर दिया जाय, परन्तु इसका टल पाना किसी भी तरह सम्भव नहीं हो पाता।

ऐसी ही एक घटना यहाँ शब्दों में पिरोयी जा रही है। वर्षों पूर्व घटी इस घटना में एक बच्चे के माता-पिता, परम पूज्य गुरुदेव के पास आए। उनके साथ उनका बच्चा भी था। जो कुछ समय से ज्वर से ग्रसित था। यह ज्वर था कि किसी चिकित्सक की औषधि से ठीक ही नहीं हो रहा था। हां, इसके दुष्प्रभाव हाथ, पांव सहित समूचे शरीर पर पड़ने शुरू हो गए थे। एक तरीके से उसका शरीर लुंज-पुंज हो गया था। बच्चे की दिमागी हालत भी बिगड़ने लगी थी। समूचा स्नायु संस्थान निष्क्रिय पड़ता जा रहा था। माता-पिता ने अपने बच्चे की सारी व्यथा गुरुदेव को कह सुनायी। उन्होंने सारी बातें ध्यान से सुनी और मौन हो गए।

बच्चे के माता-पिता बड़ी आशा भरी नजरों से उनकी ओर देख रहे थे। पर यहाँ गुरुदेव की आँखें छलक उठी थीं। वह उस बच्चे की पीड़ा से, माता-पिता के सन्ताप से विह्वल हो गए थे। थोड़ी देर बाद वह भाव भरे मन से उन लोगों से बोले, बेटा- तुम लोगों ने हमारे पास आने में देर कर दी। इसके प्रारब्ध का दुर्योग अब एकदम पक गया है। ऐसी स्थिति में कुछ भी करना सम्भव नहीं। वैसे भी यह बच्चा है, यदि हम इस पर अपनी विशेष आध्यात्मिक ऊर्जा का प्रयोग करेंगे तो इसका शरीर सह नहीं पाएगा। बहुत सम्भव है कि यह मर

ही जाए।

गुरुदेव की इन बातों ने माता-पिता को निस्पन्द कर दिया। वे निराशा से विगलित हो गए। उन्हें इस तरह पीड़ित देखकर गुरुदेव बोले, तुम लोग मेरे पास आए हो, तो इस असम्भव स्थिति में थोड़ा-बहुत तो मैं करूँगा ही। इसमें पहली चीज तो यह कि बच्चे का दिमाग एकदम ठीक हो जाएगा। अपाहिज स्थिति में भी यह प्रतिभावान होगा। अभी जो यह लगभग गूँगा हो गया है, आपसे बातचीत कर सकेगा। शारीरिक अपंगता की यह स्थिति होने के बावजूद इसमें कई तरह के कौशल विकसित होंगे। बस बेटा! इस स्थिति में इसके लिए इससे ज्यादा कुछ भी सम्भव नहीं। गुरुदेव के इन शब्दों ने बच्चे के माता-पिता को जैसे वरदान दे दिया। थोड़े ही महीने के बाद पूज्य गुरुदेव की आध्यात्मिक ऊर्जा के प्रभाव उस बच्चे के जीवन में प्रकट हुए। अपाहिज होते हुए भी वह प्रतिभावान कलाकार बना। उसके प्रारब्ध का अटल दुर्योग टला तो नहीं पर पूज्य गुरुदेव की आध्यात्मिक चिकित्सा ने उसे रूपान्तरित तो कर ही दिया। इस आश्चर्यजनक प्रक्रिया के संकेत आज भी महत्त्वपूर्ण आध्यात्मिक ग्रन्थों में देखे जा सकते हैं।



इन ग्रन्थों के मंत्रों में छिपे पड़े हैं अति गोपनीय प्रयोग

आध्यात्मिक चिकित्सा के ग्रन्थ अनगिनत हैं। इनका विस्तार असीम है। प्रत्येक धर्म ने, पंथ ने आध्यात्मिक साधनाओं की खोज की है। अपने देश-काल के अनुरूप ये सभी महत्त्वपूर्ण हैं। इनका मकसद भी एक है- सम्पूर्ण स्वस्थ जीवन एवं समग्र रूप से विकसित व्यक्तित्व। इसी उद्देश्य को लेकर सभी ने गहरे आध्यात्मिक प्रयोग किए हैं- और अपने निष्कर्षों को सूत्रबद्ध, लिपिबद्ध किया है। इन प्रयोगों की शृंखला में कई बार तो ऐसा हुआ कि विशेषज्ञों की भावचेतना अपने शिखर पर पहुँच गयी और वहाँ स्वयं ही सूत्र अवतरित होने लगे। परावाणी में दैवी सन्देश प्रकट हुए। इस्लाम का पवित्र ग्रन्थ कुरआन ऐसे ही दैवी संदेशों का दिव्य संकलन है। बाइबिल की पवित्र कथाएँ भी ऐसी ही भावगंगा में प्रवाहित हुई हैं। प्राचीन पारसी जनों के जेन्द अवेस्ता से लेकर अर्वाचीन सिख गुरुओं के ग्रन्थ साहिब तक सभी ग्रन्थ देश-काल के अनुरूप अपना अहत्व दर्शाते रहे हैं। इनमें से किसी आध्यात्मिक ग्रन्थ को कमतर नहीं कहा जा सकता।

परन्तु जब बात प्राचीनता के साथ परिपूर्णता की हो, इस वैज्ञानिक युग में उसकी सामयिकता और सार्वभौमिकता की हो, तो वेद ही परम सत्य के रूप में सामने नजर आते हैं। वेद सब भाँति अद्भुत एवं अपूर्व हैं। ये समस्त सृष्टि में संव्याप्त आध्यात्मिक दृष्टि, आध्यात्मिक शक्ति एवं आध्यात्मिक प्रयोगों का पवित्र उद्गम हैं। यदि इस कथन को अतिशयोक्ति न माना जाय तो यहाँ यह कहने में तनिक भी संकोच नहीं कि समस्त विश्व वसुधा में आध्यात्मिक भाव गंगा कहीं बही है, उसका पवित्र उद्गम वेदों का गोमुख ही है। विश्व के प्रत्येक धर्म, पंथ और मत में जो कुछ भी कहा गया है उसके सार निष्कर्ष को वेद मंत्रों

में खोजा और पढ़ा जा सकता है। यदि भविष्य कथन और भविष्य दृष्टि पर किसी का विश्वास जमे तो वे जान सकते हैं कि भावी विश्व की आध्यात्मिकता वेदज्ञान पर ही टिकी होगी।

ऐसा कहने में किसी तरह का पूर्वाग्रह नहीं है। बल्कि गम्भीर व कठिन आध्यात्मिक प्रयोगों के निष्कर्ष के रूप में यह सत्य बताया जा रहा है। हां यह सच है कि वेदमंत्रों को ठीक-ठीक समझना कठिन है। क्योंकि ये बड़ी कूटभाषा में कहे गये हैं। जो लोग अपने को संस्कृत भाषा का महाज्ञानी बताकर इनके शब्दार्थों में सत्य को टटोलने की कोशिश करते हैं, उन्हें केवल भ्रमित होना पड़ता है। वे सदा खाली हाथ रहते हैं और अपने को महा-अज्ञानी सिद्ध करते हैं। वेदमंत्रों के अर्थ शब्दों के उथलेपन में नहीं साधना की गहराई में समाए हैं। सच तो यह है कि प्रत्येक वेदमंत्र की अपनी विशिष्ट साधना विधि है। एक सुनिश्चित अनुशासन है और उसके सार्थक सत्परिणाम भी हैं।

आध्यात्मिक चिकित्सा की जितनी सूक्ष्मता व व्यापकता, सैद्धान्तिक सच्चाई एवं प्रायोगिक गहराई वेदों में है, उतनी और कहीं नहीं। यह सुदीर्घ अनुभव का सच है। जिसे समय-समय पर अनेकों ने खरा पाया है। वेद मंत्रों में आध्यात्मिक चिकित्सा के सिद्धान्तों का महाविस्तार बड़ी पारदर्शिता से किया गया है। इसमें मानव जीवन के सभी गोपनीय, गहन व गुह्य आयामों का पारदर्शी उद्घाटन है। साथ में बड़ा ही सूक्ष्म विवेचन है। यहाँ आध्यात्मिक चिकित्सा का सैद्धान्ति पथ जितना उन्नत है, उसका प्रायोगिक पक्ष उतना ही समर्थ है। ऋग्, यजुष एवं सामवेद के मंत्रों के साथ अथर्ववेद के प्रयोग तो अद्भुत एवं अपूर्व हैं। इनके लघुतम अंश से अपने जीवन में महानतम चमत्कार किए जा सकते हैं। यह विषय इतना विस्तृत है कि इसके विवेचन के लिए इस लघु लेख का अल्प कलेवर पर्याप्त नहीं है। जिज्ञासु पाठकों का यदि आग्रह रहा तो बाद में इसके विशिष्ट प्रायोगिक सूक्तों में वर्णित चिकित्सा विधि को बताया जाएगा।

अभी तो यहाँ इतना ही कहना है कि वेद में मुख्य रूप से आध्यात्मिक चिकित्सा की दो ही धाराएँ बही हैं। इनमें से पहली है यौगिक और दूसरी है

तांत्रिक। ये दोनों ही धाराएँ बड़ी समर्थ, सबल एवं सफल हैं। इनके प्रभाव बड़े आश्चर्यकारी एवं विस्मयजनक हैं। बाद के दिनों में महर्षियों ने इन दोनों विधियों के सिद्धान्त एवं प्रयोग को श्रीमद्भगवद्गीता एवं श्री दुर्गासप्तशती में समाहित किया है। हमारे जिज्ञासु पाठकों को हो सकता है थोड़ा अचरज हो, परन्तु यह सच है कि इन दोनों ग्रन्थों में से प्रत्येक में मूल रूप से ७०० मंत्र हैं। इस सम्बन्ध में आध्यात्मिक चिकित्सकों के प्रायोगिक अनुभव कहते हैं कि इन दोनों पवित्र ग्रन्थों में कथा भाग से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण इनके मंत्र प्रयोग हैं। जिन्हें यदि कोई सविधि सम्पन्न कर सके तो जिन्दगी की हवाएँ और फिजाएँ बदली जा सकती हैं।

इस सम्बन्ध में एक घटना उल्लेखनीय है। यह घटना महर्षि अरविन्द के जीवन की है। उन दिनों वे अलीपुर जेल की काल कोठरी में कैद थे। पुस्तकों के नाम पर उनके पास वेद की पोथियाँ, श्रीमद्भगवद्गीता एवं दुर्गासप्तशती ही थी। इन्हीं का चिन्तन-मनन इन दिनों उनके जीवन का सार सर्वस्व था। वह लिखते हैं कि साधना करते-करते ये महामंत्र स्वयं ही उनके सामने प्रकट होने लगे। यही नहीं इन ग्रन्थों में वर्णित महामंत्रों ने स्वयं प्रकट होकर उन्हें अनेकों तरह की योग विधियों से परिचित कराया। यह त्रिकाल सत्य है कि श्रीमद्भगवद्गीता के प्रयोग साधक को योग के गोपनीय रहस्यों की अनुभूति देते हैं। वह अपने आप ही आध्यात्मिक चिकित्सा के यौगिक पक्ष में निष्णात हो जाता है।

जहाँ तक दुर्गासप्तशती की बात है, तो इस रहस्यमय ग्रन्थ में वेदों में वर्णित सभी तांत्रिक प्रक्रियाएँ कूटभाषा में वर्णित हैं। इसके अलग-अलग पाठक्रम अपने अलग-अलग प्रभावों को प्रकट करते हैं। यूं तो इसके पाठक्रम अनेक हैं। पर प्रायः इसके ग्यारह पाठक्रमों की चर्चा मिलती है। ये ग्यारह पाठक्रम कुछ इस प्रकार हैं- १. महाविद्या क्रम, २. महातंत्री क्रम, ३. चण्डी क्रम, ४. महाचण्डी क्रम, ५. सप्तशती क्रम, ६. मृत संजीवनी क्रम, ७. रूपदीपिका क्रम, ८. निकुंभला क्रम, ९. योगिनी क्रम, १०. संहार क्रम, ११. अक्षरशः विलोम क्रम। पाठक्रम की ये सभी विधियाँ महत्त्वपूर्ण हैं। और प्रयोग के पूर्ण

होते ही अपने प्रभाव को प्रकट किए बिना नहीं रहतीं।

इन पाठ क्रमों के अतिरिक्त श्री दुर्गासप्तशती के सहस्त्रों प्रयोग हैं। इनमें से कुछ साधारण हैं तो कुछ अतिविशिष्ट। इन सब की चर्चा यहाँ सम्भव नहीं जान पड़ रही। क्योंकि यह विषय अति गोपनीय एवं गम्भीर है, जिसे गुरुमुख से सुनना-जानना व करना ही श्रेयस्कर है। संक्षेप में हम यहाँ इतना ही कहेंगे कि पृथ्वी पर ही नहीं समस्त सृष्टि में ऐसा कुछ नहीं है, जिसे दुर्गासप्तशती के समर्थ प्रयोगों से हासिल न किया जा सके। इन पंक्तियों को पढ़ने वाले इसे रंचमात्र भी अतिशयोक्ति न समझें। लगातार जो अनुभव किया गया है, वही कहा गया है। वैसे यदि बात अपने स्वयं के व्यक्तित्व की चिकित्सा की हो तो दुर्गासप्तशती के साथ गायत्री महामंत्र के प्रयोग को श्रेष्ठतम पाया गया है।

वृन्दावन के उड़िया बाबा की दुर्गासप्तशती पर भारी श्रद्धा थी। अपनी आध्यात्मिक साधना के लिए जब उन्होंने घर छोड़ा, तो कोई सम्बल न था। कहाँ जाएँ, किधर जाएँ, कुछ भी सुझायी न देता था। ऐसे में उन्हें जगन्माता का स्मरण हो आया। मां के सिवा अपने बच्चे की और कौन देखभाल कर सकता है। बस मां का स्मरण करते हुए वे शतचण्डी के अनुष्ठान में जुट गए। दुर्गासप्तशती के इस अनुष्ठान ने उनके व्यक्तित्व को आध्यात्मिक ऐश्वर्य से भर दिया। अपने इस अनुष्ठान के बारे में वे भक्तों से बताया करते थे। गायत्री महामंत्र के साथ दुर्गासप्तशती के पाठ के संयोग से अपने जीवन की आध्यात्मिक चिकित्सा की जा सकती है। इतना ही नहीं स्वयं भी आध्यात्मिक चिकित्सक होने का गौरव पाया जा सकता है।



आध्यात्मिक तेज का प्रज्वलित पुंज होता है चिकित्सक

आध्यात्मिक चिकित्सक कौन हो सकता है? इन पंक्तियों को पढ़ने वालों की उर्वर मनोभूमि में अब तक यह प्रश्नबीज अंकुरित हो चुका होगा। किसे समझें आध्यात्मिक चिकित्सक? अथवा किस तरह से बनें आध्यात्मिक चिकित्सक? ऐसे सवालों का किसी चिन्तनशील मन में उपजना स्वाभाविक है। बात सही भी है- आध्यात्मिक चिकित्सा के सैद्धान्तिक पहलू कितने ही सम्मोहक क्यों न हो, परन्तु उसके प्रायोगिक प्रभाव किसी आध्यात्मिक चिकित्सक के माध्यम से ही पाए जा सकते हैं। एक वही है जो मानवीय जीवन के सभी दोषों, विकारों को दूर कर सम्पूर्ण स्वास्थ्य का वरदान दे सकता है। इसके अभाव में न तो आध्यात्मिक चिकित्सा सम्भव हो पाएगी और न ही व्यक्तित्व के अभाव व अवरोध दूर हो सकेंगे।

निःसन्देह आध्यात्मिक चिकित्सक होने का दायित्व बड़ा है। आध्यात्मिक चिकित्सा के सिद्धान्तों एवं प्रयोगों को जानना, सामान्य चिकित्सा शास्त्र से कहीं अधिक दुष्कर है। आयुर्वेद या होमियोपैथी अथवा एलोपैथी या फिर साइकोंथेरेपी के सिद्धान्त एवं प्रयोग अपने व्यक्तित्व को संवारे-सुधारे बिना भी समझे जा सकते हैं। पर आध्यात्मिक चिकित्सा के सिद्धान्त एवं प्रयोग विधियाँ स्वयं अपने व्यक्तित्व की पाठशाला एवं प्रयोगशाला में सीखनी पड़ती है। इसके लिए किन्हीं ग्रन्थों का अवलोकन या अध्ययन पर्याप्त नहीं होता। यहाँ व्यक्ति की व्यावहारिक या बौद्धिक योग्यता से काम नहीं चलता। जो केवल शब्द जाल के महाअरण्य में भटकते रहते हैं, वे इस क्षेत्र में असफल व अयोग्य ही सिद्ध होते हैं।

हालांकि इन दिनों काफी कुछ उलटबांसी देखने को मिल रही है। 'बरसै कम्बल भीगे पानी' जैसे नजारे सब तरफ दिखाई देते हैं। इस उलटी रीति के बारे में गोस्वामी जी महाराज कहते हैं-

मारग सोई जा कहुं जोइं भावा।

पण्डित सोई जो गाल बजावा॥

मिथ्यारम्भ दम्भ रत जोई।

ता कहुं संत कहइ सब कोई॥

जिसको जो अच्छा लग जाय, उसके लिए वही आध्यात्मिक पथ है। जो डींग मारता है, वही पण्डित है। जो मिथ्या आडम्बर रचता है, और दम्भ में रत है, उसी को सब कोई सन्त कहते हैं।

यही है आज के युग का सच। ऐसे आडम्बर से भरे एवं घिरे आध्यात्मिक चिकित्सकों की इस समय बाढ़ आयी हुई है। टी.वी. में प्रचार, अखबारों में विज्ञापन, लच्छेदार प्रवचन, बात-बात में अपनी प्रशंसा, ऐसे लोग और कुछ भले हों, आध्यात्मिक चिकित्सक कभी नहीं हो सकते। क्योंकि इसके लिए बौद्धिक चतुराई या चालाकी नहीं कठिन तप साधनाएँ चाहिए। वेष नहीं आचरण चाहिए। लुभावनी वाणी की बजाय उदार हृदय चाहिए। दिखावे और आडम्बर से यहाँ कोई काम चलने वाला नहीं है। ऐसे लोग भोले-भाले पीड़ित जनों को ठगकर खुद माला-माल तो हो सकते हैं, पर उनका कोई भी हित साधन नहीं कर सकते। इस तरह के धूर्तों के चंगुल में फंसने वाले स्वास्थ्य लाभ करने के स्थान पर दुःख, दारिद्रय, विपन्नता व विषाद ही हासिल करते हैं।

आध्यात्मिक चिकित्सक के लिए तो कठोर तपकर्म ही उनके जीवन की परिभाषा होता है। शरीर, मन और वचन से ये कभी भी तप साधना से नहीं डिगते। इनका जीवन अपने आप में उच्चस्तरीय आध्यात्मिक प्रयोगशाला होता है। जिसमें कठिन आध्यात्मिक प्रयोगों की शृंखला हमेशा चलती रहती है। इनके रोम-रोम में आध्यात्मिक ऊर्जा की सरिताएँ उफनती है। इनका व्यक्तित्व आध्यात्मिक तेज का प्रज्वलित पुञ्ज होता है। जिनके अन्दर ऐसी योग्यता होती है, वही आध्यात्मिक चिकित्सक होने के लिए सुपात्र-सत्पात्र होते हैं।

आध्यात्म विद्या- अस्तित्त्व के समग्र बोध का विज्ञान है। जो इसमें निष्णात हैं, उनकी दृष्टि पारदर्शी होती है। वे व्यक्तित्व की सूक्ष्मताओं, गहनताओं व गुह्यताओं को समझने में सक्षम होते हैं। उनके लिए किसी के अन्तर में प्रविष्ट

होना उसकी समस्याओं को जान लेना बेहद आसान होता है। वे औरों को उसी तरह से देखने में समर्थ होते हैं- जैसे हम सब किसी शीशे की अलमारी में बन्द सामान को देखते हैं। यह सामान क्या है? किस तरह से रखा है? पारदर्शी शीशे से साफ-साफ नजर आता है। कुछ इसी तरह से आध्यात्मिक चिकित्सक को अपने रोगी के रहस्य नजर आते हैं। उसके लिए जितना प्रत्यक्ष व्यवहार होता है, उतने ही प्रत्यक्ष संस्कार होते हैं। वह जितनी आसानी से वर्तमान जीवन को जान सकता है, उतनी आसानी से पूर्वजन्मों को भी निहार सकता है।

युगऋषि परम पूज्य गुरुदेव ऐसे ही आध्यात्मिक चिकित्सक थे। मानवीय चेतना के सभी दृश्य-अदृश्य आयामों की मर्मज्ञता उन्हें हासिल थी। जब भी कोई उनके पास आता था, वह उसकी समस्याओं को बड़ी आसानी से समझ लेते थे। समस्याओं की समझ, उसके कारणों की खोज एवं इसके सार्थक समाधान में उन्हें कुछ ही मिनटों का समय लगता था। एक बार बातचीत के क्रम में उन्होंने कहा था- जब भी कोई मेरे पास अपनी समस्या लेकर आता है, मैं उसकी आँखों के माध्यम से उसकी अन्तर्चेतना में प्रविष्ट हो जाता हूँ। और उसकी समस्या के यथार्थ को जान लेता हूँ। उनकी इस बात पर जिज्ञासा करते हुए एक शिष्य ने कहा, गुरुदेव! आने वाला तो अपनी समस्या स्वयं ही आपको बता देता है। इसमें जानने की क्या जरूरत है।

इस शिष्य के कथन पर कुछ इस तरह से हँस पड़े जैसे कोई प्रौढ़ समझदार व्यक्ति किसी छोटे बच्चे की बात पर हँसता है। और वे हँसते हुए बोले, बेटा! कम ही लोग मेरे पास सही बात बताते हैं। यानी वे झूठ बोलते हैं, अथवा फिर अपनी बातों को बढ़ा-चढ़ा कर कहते हैं। अथवा आधी-अधूरी बात कहते हैं। अब ऐसी बातों से तो काम चलता नहीं। इसलिए मुझे उनके अन्दर झांक कर सच्चाई जाननी पड़ती है। इस तरह से समस्या की सारी सच्चाई पता चल जाती है। साथ ही समाधान के सूत्र भी हाथ लग जाते हैं। सो कैसे? पूछने वाले की इस जिज्ञासा पर वह बोले- भगवान् का बनाया हुआ यह इन्सानी व्यक्तित्व भी बड़ा अजब-गजब है। इसकी गहरी परतों में न केवल समस्या की जड़ें होती हैं, बल्कि समाधान के सूत्र भी होते हैं। प्रायः ये

समस्याएँ किसी पूर्वजन्म के कर्म, प्रारब्ध या संस्कार के कारण पनपती है। समाधान के रूप में बस इनकी थोड़ी सी आध्यात्मिक शल्यक्रिया करनी पड़ती है।

गुरुदेव की ये बातें भले ही थोड़ी रहस्यमय लगे, पर यह उनके जीवन के नित्यप्रति का सच रहा है। यदा-कदा वह यह भी कहते थे कि अधिसंख्यक समस्याएँ, विकृति एवं विकार आध्यात्मिक जीवन दृष्टि के अभाव में पनपते हैं। यदि पीड़ित व्यक्ति की जीवन दृष्टि सुधार दी जाय तो समस्या का समाधान हो जाता है। इस क्रम में एक बात महत्त्वपूर्ण है। वह यह कि जो पीड़ित व्यक्ति होता है, उसकी सोच-विचार को सही दिशा देना भी आसान काम नहीं है। क्योंकि निरन्तर पीड़ा सहते रहने के कारण उसमें संकल्प एवं साहस चुक जाते हैं। ऐसी अवस्था में उसे अतिरिक्त ऊर्जा के अनुदान की जरूरत पड़ती है। ऐसा होने पर ही वह अपने बिखरे जीवन को फिर से संवार पाता है।

स्थिति जो भी हो किन्तु इतना सच है कि आध्यात्मिक चिकित्सक को मानवीय चेतना का मर्मज्ञ होने के साथ आध्यात्मिक ऊर्जा का अजस्र स्रोत होना चाहिए। उसकी बौद्धिक पारदर्शिता, सघन भाव प्रवणता एवं अन्तरात्मा में उफनते आध्यात्मिक शक्ति के महासागर ही उसे सफल आध्यात्मिक चिकित्सक बनाते हैं। अपनी इस सामर्थ्य के बलबूते ही वह अपने रोगी के रोग निदान एवं समाधान में सक्षम हो पाता है।



आध्यात्मिक निदान-पंचक

रोग निदान- रोगी की चिकित्सा का आधार है। इसी के सहारे रोगी के लिए औषधि, अनुपान, पथ्यापथ्य आहार एवं जीवन क्रम का निर्धारण हो पाता है। इसमें थोड़ी सी भूल-चूक होने पर चिकित्सा का सारा सरंजाम लड़खड़ा जाता है। यही नहीं कभी-कभी तो स्वास्थ्य का वरदान देने वाली चिकित्सा प्रणाली जानलेवा भी सिद्ध होती है। इसी वजह से प्रत्येक चिकित्सा पद्धति ने अपने ढंग से रोग निदान की अचूक विधियों की खोज की है। इसके कारगर तरीकों का अनुसन्धान एवं विकास किया है। क्योंकि चिकित्सा प्रणाली कोई भी हो, इसकी सफलता या विफलता का सारा दारोमदार सही व सटीक रोग निदान पर निर्भर करता है। स्थिति तो यहाँ तक है कि आज रोग निदान की अचूक विधियों को ही चिकित्सा प्रणाली की सफलता की गारन्टी के रूप में माना जाने लगा है।

जिसे हम आधुनिक चिकित्सा पद्धति कहते हैं, उसने अपनी सफलता के लिए रोग निदान की अत्याधुनिक तकनीकें विकसित की हैं। कई चिकित्सालयों एवं चिकित्सा संस्थानों ने तो इसी के लिए अपनी प्रसिद्धि हासिल की है, कि उनके यहाँ रोग निदान का यह ढांचा कितना चुस्त-दुरुस्त एवं मजबूत है। सामान्य रोगी परीक्षण या रोग निदान की क्लीनिकल विधियों से लेकर पेथोलोजिकल विधियाँ या फिर सी-टी. स्कैन, एम.आर. आई. के मंहगे उपकरण इसी महत्त्वपूर्ण उद्देश्य के लिए तत्पर रहते हैं। अपने-अपने ढंग से चिकित्सकों की कोशिश यही रहती है कि इसमें किसी तरह की कोई भूल-चूक न होने पाए।

चिकित्सा प्रणाली कोई भी हो, पर रोग निदान के एकदम सटीक होने की कोशिश सभी जगह हैं। आयुर्वेद में वात, पित्त एवं कफ प्रकृति को ध्यान में रखकर रोग निदान करने की परम्परा है। उसके लिए नाड़ी परीक्षण एवं निदान पंचक आदि की प्रक्रियाएँ अपनायी जाती हैं। इसके निष्कर्षों के आधार पर ही

रोगी की चिकित्सा का सरंजाम किया जाता है। होमियोपैथी में यह परिदृश्य थोड़ा अलग ढंग का है, इसमें रोगी की शारीरिक स्थिति के साथ उसकी मनोदशा का भी परीक्षण करते हैं। इन प्रचलित एवं पारम्परिक चिकित्सा प्रणालियों के अलावा वैकल्पिक चिकित्सा प्रणालियों के जो आयाम इन दिनों विकसित हुए हैं, उन सभी में कहीं न कहीं रोग निदान की समुचित विधि व्यवस्था की गयी है। क्योंकि जब निदान ही नहीं तो समाधान किस व्याधि का।

आध्यात्मिक चिकित्सा के क्षेत्र में रोग निदान का परिदृश्य थोड़ा अधिक व्यापक है। इसमें प्रचलित व पारम्परिक तरीकों से अलग हटकर इसका तंत्र विकसित किया गया है। इसका कारण यह है कि आध्यात्मिक दृष्टि मानवीय जीवन को समग्रता एवं परिपूर्णता से देखने पर विश्वास करती है। उसका जोर किसी एक आयाम पर नहीं है, बल्कि दृश्य-अदृश्य सभी आयामों पर समान रूप से है। इसी को ध्यान में रखकर इसकी रोग निदान विधियों को विकसित किया गया है। ताकि रोग की जड़ें कितनी भी गहरी क्यों न हो, उन्हें उखाड़ा और नष्ट किया जा सके।

इसी उद्देश्य को पूरा करने के लिए आध्यात्मिक चिकित्सा के, रोग निदान के पांच आयामों का ताना-बाना बुना गया है। आयुर्वेद-निदान पंचक की भाँति इसे आध्यात्मिक निदान-पंचक नाम दिया जा सकता है। इसके अन्तर्गत आध्यात्मिक चिकित्सक रोगी के व्यक्तित्व के पांच तत्त्वों का परीक्षण करते हैं। इनमें से पहला है व्यवहार, २. चिन्तन, ३. संस्कार, ४. प्रारब्ध एवं ५. पूर्वजन्म के दोष-दुष्कर्म। इन पांच का परीक्षण करके रोग का सही निदान कर लिया जाता है। जहाँ तक इन पाँच तत्त्वों का प्रश्न है, तो आध्यात्मिक चिकित्सा के लिए इन सभी का व्यापक महत्त्व है। हालांकि इनमें एक को छोड़कर बाकी सभी आयाम अदृश्य हैं, जो आध्यात्मिक दृष्टि एवं शक्ति के बिना देखे एवं जाने नहीं जा सकते। लेकिन इन अदृश्य तथ्यों को जाने बिना आध्यात्मिक चिकित्सा भी तो सम्भव नहीं है।

इसमें से पहले यानि कि व्यवहार के अन्तर्गत रोगी की शारीरिक पीड़ा-

परेशानी अथवा मानसिक दुःख-दर्द का लेखा-जोखा उसके व्यवहार की स्थिति के आधार पर करते हैं। इस सबसे उसके चिन्तन चेतना पर पड़े हुए प्रभावों की पड़ताल, चिन्तन प्रक्रिया की जाँच से की जाती है। तीसरे क्रम में संस्कार की परत अपेक्षाकृत गहरी है। इसकी जांच किसी भी मनोवैज्ञानिक परीक्षण के द्वारा सम्भव नहीं। इसे तो सीधे ही आध्यात्मिक दृष्टि एवं शक्ति से किया जाना होता है। ज्यादातर रोगों के कारण यहीं जड़ जमाए होते हैं। चौथे क्रम में प्रारब्ध की जाँच परख थोड़ी और जटिल होती है। यदि रोग के कारण हमारे बाह्य जीवन में कहीं नजर नहीं आ रहे। और इनका पता हमारे संस्कार क्षेत्र में नहीं चल रहा तो फिर प्रारब्ध की छान-बीन करनी ही पड़ती है।

लम्बे समय तक यानि कि दस-पन्द्रह वर्षों तक चलने वाले रोग अथवा फिर एक के बाद एक नए कष्ट-कठिनाइयों का प्रकट होना प्रायः प्रारब्ध के ही कारण होता है। यहीं पर इनकी जड़ें होती हैं। यदि इस गहरी परत को सही ढंग से न जाना समझा गया तो रोग या कष्ट निवारण के सारे प्रयास धरे रह जाते हैं। पांचवे क्रम में आध्यात्मिक चिकित्सक को कतिपय विशेष रोगियों के रोग निवारण में यह भी जानना पड़ता है कि उसके जीवन में प्रारब्ध के ये दुर्योग क्यों आए। यह दुःखद प्रक्रिया आखिर चली ही क्यों? पिछले जन्मों के कौन से कर्म इसका कारण रहे हैं। पूर्वजन्मों के ज्ञान से ही इस सच का पता लगाया जा सकता है। ऐसा करके ही रोग के सटीक निदान एवं सार्थक समाधान तक पहुँचना सम्भव हो पाता है।

आध्यात्मिक चिकित्सक के रूप में परम पूज्य गुरुदेव इन सभी प्रक्रियाओं में निष्णात व मर्मज्ञ थे। आध्यात्मिक निदान पंचक में उनकी विशेषज्ञता का पास रहने वालों को नित्यप्रति अनुभव होता था। यूं तो इस तरह के अनुभव एवं घटनाएँ तो हजारों हैं, पर यहाँ केवल एक घटना का उल्लेख किया जा रहा है। यह घटना एक ऐसे व्यक्ति से सम्बन्धित है जो गुरुदेव से वर्षों से जुड़ा हुआ था। वर्षों के सान्निध्य के बाजवूद उसका घर-परिवार रोग-शोक-सन्ताप से घिरा था। आर्थिक स्थिति भी विपन्न थी। जब भी वह गुरुदेव के पास आता, अपनी परेशानी कहते हुए रोने लगता। गुरुदेव भी उसके दुःख से द्रवित हो

जाते। कभी-कभी तो उनके आँसू भी छलक आते। यह भी कहते तुम परेशान न हो बेटा मैं तुम्हारे लिए प्रयास कर रहा हूँ। पर उनके इस कथन एवं आश्वासन के बावजूद उसके जीवन में कहीं कोई अच्छा होने के लक्षण नहीं नजर आ रहे थे।

हार-थक कर एक दिन वह प्रयाग चला गया। वहाँ कुम्भ मेला लगा हुआ था। अनेकों सन्त-महात्मा यहाँ आए हुए थे। एक स्थान पर देवरहा बाबा का भी मचान लगा हुआ था। परेशान तो वह था ही। इस परेशानी को ओढ़े हुए वह उनके पास गया। उसे देखकर पहले तो उन्होंने आशीर्वाद का हाथ उठाया। फिर स्वयं ही बोले- तुम्हारा नाम रामनारायण है, फतेहपुर के रहने वाले हो, शान्तिकुञ्ज के आचार्य जी के शिष्य हो। अच्छा मेरे पास आओ। और उन्होंने भीड़ में से उसे बुलाकर अपना चरण उसके माथे पर रखा और कहा तुम इतने हैरान क्यों हों, तुम्हारे ऊपर आचार्य जी की कृपा है। तुम नहीं जानते कि वह बिना कुछ कहे तुम्हारे लिए क्या कुछ कर रहे हैं।

यह कहते हुए वह थोड़ा रुके और बोले- तुम्हारे संस्कार, प्रारब्ध एवं पूर्वजन्म के कर्म भयावह हैं। अगर आचार्य जी की कृपा न होती तो तुम्हारा सभी कुछ तिनका-तिनका बिखर गया होता। न तुम बचते और न तुम्हारा परिवार। अब तक सब कुछ समाप्त हो चुका होता। आचार्य श्री दिव्य द्रष्टा हैं, वह सब कुछ जानते हैं और उचित उपाय कर रहे हैं। तुम सोचो कि तुम्हारे ऊपर उनका इतना स्नेह है कि अभी थोड़ी देर पहले वह सूक्ष्म रूप से हमारे पास आए थे, और उन्होंने कहा कि आप हमारे इस बच्चे को समझा दो कि उसका सब कुछ ठीक हो जाएगा। देवरहा बाबा की बातों ने सुनने वाले को अभिभूत कर दिया। समयानुसार शान्तिकुञ्ज आने पर उसने ये सारी बातें गुरुदेव को बतायी। सुनकर वह मुस्करा दिए। बस इतना बोले बेटा- तुम अभी मेरे अस्पताल में भरती हो। मैं एक अच्छे डाक्टर की तरह तुम्हारी देखभाल कर रहा हूँ। कुछ ही वर्षों बाद उसकी परिस्थितियाँ बदल गई। उसने चिकित्सक एवं रोगी के सम्बन्धों की पवित्र भावनाओं को अपने अन्तःकरण में महसूस किया।



चिकित्सक का व्यक्तित्व तपःपूत होता है

चिकित्सक और रोगी के सम्बन्ध पवित्रता एवं प्रामाणिकता के तन्तुओं से बुने होते हैं। चिकित्सा की प्रणाली चाहे कोई हो अथवा फिर रोगी की प्रकृति किसी तरह की हो, सम्बन्धों का आधार यही होता है। हां आध्यात्मिक चिकित्सा के क्षेत्र में यह पवित्रता व प्रामाणिकता अपेक्षाकृत शत-सहस्रगुणित सघन हो जाती है। क्योंकि आध्यात्मिक चिकित्सा में चिकित्सक का व्यक्तित्व तप साधना की ऊर्जा तरंगों से ही विनिर्मित होता है। और तप की परिभाषा व तपस्वी होने का पर्याय ही पवित्रता है। व्यक्तित्व में पवित्रता जितनी बढ़ती है, आध्यात्मिक पात्रता उतनी ही विकसित होती है। इसी के अनुपात में व्यक्ति की प्रामाणिकता भी बढ़ती जाती है। यही वे तत्त्व हैं जो रोगी को अपने चिकित्सक के प्रति आस्थावान बनाते हैं।

वैसे भी इन सम्बन्धों को निभाने की, गरिमापूर्ण बनाने की ज्यादा जिम्मेदारी चिकित्सक की होती है। वैसे भी रोगी तो रोगी ठहरा। उसका जीवन तो अनेकों शारीरिक-मानसिक दुर्बलताओं से ग्रसित होता है। ये दुर्बलताएँ एवं कमजोरियाँ ही तो उसे रोगी बनाती हैं। उसके अटपटे आचरण को क्षमा के योग्य माना जा सकता है। किन्तु चिकित्सक की कोई भी कमी-कमजोरी सदा अक्षम्य होती है। उसे अपनी किसी भूल के लिए कभी क्षमा नहीं किया जा सकता। यही वजह है कि चिकित्सक को अपनी पवित्रता व प्रामाणिकता सदा कसौटी पर कसते हुए खरा साबित करते रहना चाहिए। उसमें तनिक सा खोटापन असहनीय है। इसे बर्दाश्त नहीं किया जा सकता।

चिकित्सक के संवेदन सूत्रों से रोगी का जुड़ाव होता है। उसकी संवेदना पर भरोसा करके ही रोगी अपनी परेशानी कहने-बताने की हिम्मत जुटा पाता है। इस संसार में सबसे ज्यादा कमी अपनेपन की है। रोगी के जो अपने सम्बन्ध है, जरूरी नहीं कि वहाँ वह अपनी व्यथा कह पाता हो। क्योंकि अपने और

अपनों का खोखलापन जगविदित है। कभी-कभी तो सम्बन्धों का यह खोखलापन खालीपन ही उसके रोग का कारण होता है। अपनी वे बातें जो रोगी कहीं नहीं कह सका, वे दु:ख-दर्द जिन्हें किसी से नहीं बांट सका, व्यथा की वह कहानी जो अनकही रह गयी केवल अपने चिकित्सक को बताना-सुनाना चाहता है। चिकित्सक की संवेदना के बलबूते ही वह ऐसा करने की हिम्मत जुटा पाता है। रोगी के लिए चिकित्सक से अधिक उसका अपना कोई नहीं होता। इसलिए चिकित्सक का कर्त्तव्य है कि वह सम्बन्ध सूत्रों की दृढ़ता को बनाए रखे।

इस दृढ़ता के लिए चिकित्सक में संवेदनशीलता के साथ सहिष्णुता भी जरूरी है। वैसे तो यह अनुभूत सच है कि संवदनशीलता, सहिष्णुता, सहनशीलता को विकसित करती है। फिर भी इसके विकास पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है। क्योंकि रोगी अवस्था में व्यक्ति शारीरिक रूप से असहाय होने के साथ मानसिक रूप से चिड़चिड़ा हो जाता है। उसमें व्यावहारिक असामान्यताओं का पनपना सामान्य बात है। यदा-कदा तो ये व्यावहारिक असामान्यताएँ इतनी अधिक असहनीय होती हैं, जिन्हें उसके सगे स्वजन भी नहीं सहन कर पाते। उनकी भी यही कोशिश होती है कि अपने इस रोगी परिजन को किसी चिकित्सक के पल्ले बांधकर अपना पीछा छुड़ा लें। ऐसे में चिकित्सक की सहनशीलता उसकी चिकित्सा विधियों को असरदार एवं कारगर बना सकती है।

यूं तो सम्बन्धों का स्वरूप कोई भी हो, पर सम्बन्ध सूत्र हमेशा ही कोमल-नाजुक होते हैं। पर चिकित्सक एवं रोगी के सम्बन्ध सूत्रों की कोमलता व नाजुकता कुछ ज्यादा ही बढ़ी-चढ़ी होती है। थोड़ा सा भी आघात इन्हें हमेशा के लिए तहस-नहस कर सकता है। ऐसे में चिकित्सक को विशेष सावधान होना जरूरी है। क्योंकि रोगी के विगत अनुभवों की कड़वाहट उसे अपनी चिकित्सा साधना से धोनी होती है। कई बार रोगी के पिछले अनुभव अति दु:खद होते हैं। इनकी पीड़ा उसे हमेशा सालती रहती है। विगत में मिले हुए अपमान, लांछन, कलंक, धोखे, अविश्वास को वह भूल नहीं पाता। यहाँ तक कि उसका सम्बन्धों एवं अपनेपन से भरोसा उठ चुका होता है। ऐसी स्थिति में वह चिकित्सक को भी अविश्वसनीय नजरों से देखता है। उसे भी

बेइमान व धोखेबाज समझता है। बात-बात पर उस पर चिड़चिड़ाता व गाली बकता है। उसकी इस मनोदशा को सुधारना व संवारना चिकित्सक का काम है। संवेदनशील सहनशीलता का अवरिम प्रवाह ही यह चमत्कार कर सकता है।

स्थिति जो भी हो रोगी कुछ भी कहे या करे, उसके प्रत्येक आचरण को भुलाकर उसकी चिकित्सा करना चिकित्सक का धर्म है, उसका कर्त्तव्य है। आध्यात्मिक चिकित्सक के लिए तो उसकी अनिवार्यता और भी बढ़ी-चढ़ी है। सच्चा आध्यात्मिक चिकित्सक वही है जो रोगी की अनास्था को आस्था में, अविश्वास को विश्वास में, अश्रद्धा को श्रद्धा में, द्वेष को मित्रता में, घृणा को प्रेम में बदल दे। इसी को उसके तपस्वी व्यक्तित्व एवं आध्यात्मिक रूप से ऊर्जावान होने का प्रमाण माना जा सकता है। हर युग में आध्यात्मिक चिकित्सा वही करते रहे हैं। महाप्रभु चैतन्य ने जघाई-मघाई के साथ यही किया था। योगी गोरखनाथ ने दस्यु दुर्दम के साथ यही चमत्कार किया था। स्वयं युगऋषि परम पूज्य गुरुदेव ने हजारों रोगियों की इसी विधि से चिकित्सा की। डाकू अंगुलीमाल की महात्मा बुद्ध के द्वारा की गयी आध्यात्मिक चिकित्सा को सभी जानते हैं। यह सत्य कथा आज भी किसी आध्यात्मिक चिकित्सक के लिए आदर्श है।

अंगुलीमाल क्रूर व निर्मम दस्यु था। उसके बारे में यह प्रचलित था कि वह मिलने वालों को मारकर उसकी तर्जनी अंगुली काट लेता है। ऐसी अनगिनत अंगुलियों को काट कर उसने माला बना रखी थी। सेनाएँ उससे डरती थीं। स्वयं कोशल नरेश प्रसेनजित उससे भय खाते थे। उसकी निर्ममता-क्रूरता एवं हत्यारे होने के सम्बन्ध में अनेकों लोक कथाएँ जन-जन में कही-सुनी जाती थी। लेकिन जब इन किंवदन्तियों को बुद्ध ने सुना तो उन्हें अंगुलीमाल में एक हत्यारे के स्थान पर मनोरोगी नजर आया। भगवान् तथागत ने सम्पूर्ण तत्परता के साथ उसकी स्थिति का ऑकलन कर लिया। उन्होंने सोचा अंगुलीमाल की यह दशा किन्हीं क्रियाओं की प्रतिक्रिया है। न जाने कितनों ने कितनी बार उसकी भावनाओं को आहत किया होगा। कितनी बार उसका दिल दुखा होगा। कितनी बार उसकी संवेदनाएँ कुचली, मसली और रौंदी गयी होगी।

अंगुलीमाल का वह दर्द जिसे अब तक कोई महसूस न कर सका, भगवान् बुद्ध ने पलक झपकते इसे अपने प्राणों में अनुभव कर लिया।

अंगुलीमाल की पीड़ा उनके अपने प्राणों की पीर बन गयी और वह चल पड़े। वन में उन्हें देखते ही अंगुलीमाल ने अपना गंडासा उठाया, पर बुद्ध खड़े रहे। उनकी आँखों से करूणा झलकती रही। अंगुलीमाल उन्हें डांटता, डपटता, धमकाता रहा, बुद्ध उसे सुनते-सहते रहे। अन्त में जब वह चुप हो गया तो उन्होंने कहा- वत्स तुमको सबने बहुत सताया है। अनगिन लोगों ने अनगिन बार तुम्हारी भावनाओं को चोट पहुँचाई है। मैं तुम्हारे दर्द को बांटने आया हूँ। करूणा से सने ऐसे स्वरों को अंगुलीमाल ने कभी न सुना था। उसने तो सिर्फ घृणा, उपेक्षा एवं अपमान के दंश झेले थे, पर बुद्ध के स्वरों में तो मां की ममता छलक रही थी। उनके ज्योतिपूर्ण नेत्रों से तो उसके लिए सिर्फ प्रेम छलक रहा था।

पल भर में उस दस्यु कहे जाने वाले पीड़ित मानव के आवरण गिर गए। उसका व्यक्तित्व भगवान् तथागत की करूणा से स्नात हो गया। एक क्षण में अनेकों चमत्कार घटित हो गए। अनास्था आस्था में बदली, अविश्वास विश्वास में, अश्रद्धा श्रद्धा में बदली तो द्वेष मित्रता में और घृणा प्रेम में परिवर्तित हो गयी। दस्यु का व्यक्तित्व भिक्षु के व्यक्तित्व में रूपान्तरित हो गया। लेकिन इस रूपान्तरण का स्रोत आध्यात्मिक चिकित्सक के रूप में बुद्ध का व्यक्तित्व था। जिन्होंने उस मानसिक रोगी के अन्तर्मन को अपनी पवित्रता एवं प्रामाणिकता के धागों से जोड़ लिया था। बाद में विज्ञजनों ने कहा कि वह क्षण ही विशेष था, जिसे भगवान् ने अंगुलीमाल के रूपान्तरण के लिए चुना था। यही कारण है कि यह भी सच है कि आध्यात्मिक चिकित्सा की सफलता के लिए कोई ज्योतिष की उपादेयता को नकार नहीं सकता।



ज्योतिर्विज्ञान की अति महती भूमिका

ज्योतिष की उपयोगिता आध्यात्मिक चिकित्सा के लिए असंदिग्ध है। यदि आध्यात्मिक चिकित्सक की ज्योतिष का सही और समुचित ज्ञान है तो वह रोगी के जीवन का काफी कुछ आकलन कर सकता है। हालाँकि आज के दौर में ज्योतिष विद्या के बारे में अनेकों भ्रान्तियाँ फैली हैं। कई तरह की कुरीतियों, रूढ़ियों व मूढ़ताओं की कालिख ने इस महान विद्या को आच्छादित कर रखा है। यदि लोक प्रचलन एवं लोक मान्यताओं को दरकिनार कर इसके वास्तविक रूप के बारे में सोचा जाय तो इसकी उपयोगिता से इंकार नहीं किया जा सकता। यह व्यक्तित्व के परीक्षा की काफी कारगर तकनीक है। इसके द्वारा व्यक्ति की मौलिक क्षमताएँ, भावी सम्भावनाएँ आसानी से पता चल जाती हैं। साथ ही यह भी मालूम हो जाता है कि व्यक्ति के जीवन में कौन से घातक अवरोध उसकी राह रोकने वाले हैं अथवा प्रारब्ध के किन दुर्योगों को उसे किस समय सहने के लिए विवश होना है।

लेकिन इसके लिए इसके स्वरूप एवं प्रक्रिया के विषय को जानना जरूरी है। आज का विज्ञान व वैज्ञानिकता इस सत्य को स्वीकारती है कि अखिल ब्रह्माण्ड ऊर्जा का भण्डार है। यह स्वीकारोक्ति यहाँ तक है कि आधुनिक भौतिक विज्ञानी पदार्थ के स्थान पर ऊर्जा तरंगों के अस्तित्व को स्वीकारते हैं। उनके अनुसार पदार्थ तो बस दिखने वाला धोखा है, यथार्थ सत्य तो ऊर्जा ही है। इस सृष्टि में कोई भी वस्तु हो या फिर प्राणि-वनस्पति, वह जन्मने के पूर्व भी ऊर्जा था और मरने के बाद भी ब्रह्माण्ड की ऊर्जा तरंगों का एक हिस्सा बन जायेगा। विज्ञानविद् एवं अध्यात्मवेत्ता दोनों ही इस सत्य को स्वीकारते हैं कि ब्रह्माण्डव्यापी इस ऊर्जा के अनेकों तल-स्तर एवं स्थितियाँ हैं जो निरन्तर परिवर्तित होती रहती हैं। इनमें यह परिवर्तन ही सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति एवं लय का कारण है।

हालाँकि यह परिवर्तन क्यों होता है-इस बारे में वैज्ञानिकों एवं अध्यात्मविदों में सैद्धान्तिक असहमति है। वैज्ञानिक दृष्टि जहाँ इस परिवर्तन के मूल कारण मात्र सांयोगिक प्रक्रिया मानकर मौन धारण कर लेती है। वहीं आध्यात्मिक दृष्टिकोण इसे ब्राह्मीचेतना से उपजी सृष्टि प्रकिया की अनिवार्यता के रूप में समझता है। इसके अनुसार मनुष्य जैसे उच्चस्तरीय प्राणी की स्थिति में परिवर्तन उसके कर्मों, विचारों, भावों एवं संकल्प के अनुसार होता है। ज्योतिष विद्या का आधारभूत सब यही है। यद्यपि इस विद्या के विशेषज्ञ यह भी बताते हैं कि जीवन व्यापी परिवर्तन के इस क्रम में ब्रह्माण्डीय ऊर्जा के विविध स्तर भी किसी न किसी प्रकार से मर्यादित होते हैं। ऊर्जा के इन विभिन्न स्तरों को ज्योतिष के विशेषज्ञों ने प्रतीकात्मक संकेतों में वर्गीकृत किया है। नवग्रह, बारह राशियाँ, सत्ताइस नक्षत्र इस क्रमिक वर्गीकरण का ही रूप है। प्रतीक कथाओं, उपभागों एवं रूपकों में इनके बारे में कुछ भी क्यों न कहा गया हो, पर यथार्थ में ये ब्रह्माण्डीय ऊर्जा धाराओं के ही विविध स्तर व स्थितियाँ हैं।

ज्योतिष के मर्मज्ञ एवं आध्यात्मिक ज्ञान के विशेषज्ञ दोनों ही एक स्वर से इस सच्चाई को स्वीकारते हैं कि मनुष्य के जन्म के क्षण का विशेष महत्त्व है। यूँ तो महत्त्व प्रत्येक क्षण का होता है, पर जन्म का क्षण व्यक्ति को जीवन भर प्रभावित करता रहता है। ऐसा क्यों है ? तो इसका आसान सा जवाब यह है कि प्रत्येक क्षण में ब्रह्माण्डीय ऊर्जा की विशिष्ट शक्तिधाराएँ किसी न किसी बिन्दु पर किसी विशेष परिमाण में मिलती हैं। मिलन के इन्हीं क्षणों में मनुष्य का जन्म होता है। इस क्षण में ही यह निर्धारित हो पाता है कि ऊर्जा की शक्तिधाराएँ भविष्य में किस क्रम में मिलेंगी और जीवन में अपना क्या प्रभाव प्रदर्शित करेंगी।

बात केवल मनुष्य की नहीं है, उस क्षण में जन्मने वाले मिट्टी, पत्थर, मकान-दुकान, कुत्ता, बिल्ली, वृक्ष-वनस्पति सभी का सच एक ही है। यही कारण है कि ज्योतिष के मर्मज्ञ व विशेषज्ञ प्रत्येक जड़ या चेतन का ऊर्जा चक्र या कुण्डली तैयार करते हैं। यह चक्र प्राय: ब्रह्माण्डीय ऊर्जा की नव मूल धाराओं या नवग्रह एवं बारह विशिष्ट शक्तिधाराओं या राशियों को लेकर होता

है। यदि गणना सही ढंग से की गई है तो इन ऊर्जा धाराओं के सांयोगिक प्रभाव इन पर देखने को मिलते हैं। परन्तु मनुष्य की स्थिति थोड़ी सी भिन्न है। वह न तो जड़ पदार्थों की तरह एकदम अचेतन है और न वृक्ष-वनस्पतियों या अन्य प्राणियों की तरह अर्धचेतन। इसे तो आत्मचेतन कहा गया है। इसमें दूरदर्शी विवेकशीलता का भण्डार है। यही वजह है कि वह स्वयं को अपने ऊपर पड़ने वाले ब्रह्माण्डीय ऊर्जा प्रवाहों के अनुसार समायोजित करने में सक्षम है।

जहाँ तक ज्योतिष की बात है तो वह जन्म क्षण के अनुसार बनाये गये ऊर्जा चक्र के क्रम में यह निर्धारित करती है कि इस व्यक्ति पर कब कौन सी ऊर्जा धाराएँ किस भाँति प्रभाव डालने वाली हैं। इस चक्र से यह भी पता चलता है कि विगत में किये गये किन कर्मों, संस्कारों अथवा प्रारब्ध के किन कुयोगों अथवा सुयोगों के कारण उसका जन्म इस क्षण में हुआ। यह ज्ञान ज्योतिष का एक भाग है। इसी के साथ इसका दूसरा हिस्सा भी जुड़ा हुआ है। यह दूसरा हिस्सा इन विशिष्ट ऊर्जाधाराओं के साथ समायोजन के तौर-तरीकों से सम्बन्धित है। अर्थात् इसमें यह विधि विज्ञान है कि किन स्थितियों में हम क्या करें? यानि कि क्या उपाय करके मनुष्य अपने जीवन में आने वाले सुयोगों व सौभाग्य को बढ़ा सकता है। और किन उपायों को अपना कर वह अपने कुयोगों को कम अथवा निरस्त कर सकता है।

प्रत्येक स्थिति को सँवारने के लिए अनेकों विधियाँ हैं और सभी प्रभावकारी हैं। आध्यात्मिक चिकित्सक इनमें से किसी भी विधि को स्वीकार या अस्वीकार कर सकते हैं। यह सब उनकी विशेषज्ञता पर निर्भर है। हालाँकि इन पंक्तियों में इस सच को स्वीकारने में कोई संकोच नहीं हो रहा है कि आज के दौर में ऐसे विशेषज्ञ व मर्मज्ञ नहीं के बराबर हैं, जो अध्यात्म साधना और ज्योतिष विद्या दोनों में निष्णात हों, पर कुछ दशक पूर्व भारतीय विद्या के महा पण्डित महामहोपाध्याय डॉ. गोपीनाथ कविराज के गुरु स्वामी विशुद्धानन्द जी महाराज के जीवन में यह दुर्गम सुयोग उपस्थित हुआ था। हिमालय के दिव्य क्षेत्र ज्ञानगंज के साधना काल में उन्होंने अपने गुरुओं से अध्यात्म चिकित्सा के साथ ज्योतिष विद्या में भी मर्मज्ञता प्राप्त की थी।

वह ज्योतिष के तीनों आयामों-१. गणित ज्योतिष, २. योग ज्योतिष एवं देव ज्योतिष में पारंगत थे। गणित ज्योतिष को तो सभी जानते हैं। इसमें जन्म समय के अनुसार गणना करके फलाफल का विचार किया जाता है। योग ज्योतिष में योग विद्या के द्वारा व्यक्ति के माता-पिता के मिलन का पता करते हैं, इसकी गणना गर्भाधान के क्षण से की जाती है, न कि जातक के भूमिष्ट होने के क्षण से। देव ज्योतिष में कई आश्चर्य प्रकट होते हैं। जैसे व्यक्ति के नाम से ही उसकी कुण्डली बना देना। उसके वस्त्र अथवा किसी परिचित व्यक्ति को आधार मानकर उसके जन्म चक्र एवं फलाफल का ठीक-ठीक विवेचन कर देना। व्यक्ति को देखकर उसकी पत्नी अथवा किसी दूर-दराज के रिश्तेदान की जन्म कुण्डली बना देना और उसका सही फलाफल बता देना।

स्वामी विशुद्धानन्द अपनी अध्यात्म चिकित्सा में ज्योतिष के इन आयामों का समयानुसार उपयोग करते थे। रोहणी कुमार चेल महाशय ने उनके साथ हुए अपने अनुभव को बताते हुए कहा है, कि जब वह पहली बार उनसे मिलने गये तो अपने हैण्ड बैग में स्वयं की एवं पत्नी की कुण्डली लेकर गये थे। मकसद जिन्दगी की कुछ समस्याओं का समाधान पाना था। पर ज्यों ही वह बैठे और कुण्डली निकालने लगे, त्यों ही विशुद्धानन्द जी ने उन्हें टोक दिया और कहा रूको! यह कहते हुए उन्होंने किताब के अन्दर रखा कागज निकाला। इस कागज में न केवल उनकी वरन् उनकी पत्नी की कुण्डली थी बल्कि फलाफल आदि का विवरण लिखा था। आश्चर्यचकित रोहणी कुमार चेल ने अपने पास रखी एवं विशुद्धानन्द महाराज द्वारा बतायी गयी कुण्डलियों को मिलाया। इसमें पत्नी की कुण्डली तो एकदम वही था, पर उनकी कुण्डली में जन्म लग्न अलग थी।

जिज्ञासा करने पर उन्होंने कहा कि मेरी बनायी कुण्डली ही सही है, क्योंकि तुम्हारे पास की कुण्डली यदि सही होती तो तुम साधारण इंसान न होकर अवतार होते। और तुम हमारे पास न आते, बल्कि मैं स्वयं तुम्हारे पास आता। क्योंकि तुम्हारे पास की जो कुण्डली है उसमें वर्णित जन्म लग्न के साथ ब्रह्माण्ड की जो ऊर्जाधाराएँ जिस क्रम में मिल रही थीं, वह सब कुछ असाधारण

था। ऐसे समय में तो मानव जन्म घटित ही नहीं होता। वह तो एक असाधारण क्षण था। इस वार्तालाप के साथ ही उन्होंने उनकी आध्यात्मिक चिकित्सा के सारे सरंजाम जुटा दिये। इस चिकित्सा की प्रक्रिया में कतिपय तंत्र की तकनीकें भी शामिल थीं।



तंत्र एक सम्पूर्ण विज्ञान, एक चिकित्सा पद्धति

तंत्र की तकनीकें प्रत्येक स्थिति में असरकारक सिद्ध होती हैं। आध्यात्मिक चिकित्सक इनका इस्तेमाल व्यक्ति के दुःख, दुर्भाग्य, दोष-दैन्य, पीड़ा-पतन, विकृति-विरोध आदि के निवारण के लिए करते हैं। यदि इन तकनीकों का प्रयोग सविधि किया गया है, तो इनका प्रभाव अचूक होता है। स्थिति कैसी भी हो, व्यक्ति कोई भी हो इनके सटीक असर हुए बिना नहीं रहते। इस दुर्लभ विज्ञान के आधिकारिक विद्वान इस युग में कम ही हैं, पर जो हैं, उनके सान्निध्य में इसके चमत्कार अनुभव किये जा सकते हें। इन विशेषज्ञों का कहना है कि अध्यात्म विद्या के दो आयाम हैं- एक आत्मिकी, दूसरा भौतिकी। आत्मिकी को योग विज्ञान एवं भौतिकी को तंत्र विज्ञान कहते हैं। इस वैज्ञानिक युग में भौतिकी शब्द थोड़ा भ्रमित करने वाला है, क्योंकि इससे फिजिक्स का बोध होता है। ऐसी स्थिति में इसको पराभौतिकी का नाम दिया जा सकता है।

तंत्र महाविद्या की स्थिति भी सचमुच में कुछ ऐसी ही है। जिन चीजों को हम उपेक्षित एवं अवाँछनीय मानते हैं, तंत्र की तकनीकों में उनका बड़ा कारगर इस्तेमाल होता है। पदार्थ विज्ञान ने अणु भौतिकी, कण भौतिकी एवं क्वाण्टम यांत्रिकी की खोजें अभी कुछ ही दशकों पूर्व की हैं। पर तंत्र विशेषज्ञों ने सहस्राब्दियों पूर्व न केवल इन सत्यों को पहचाना, बल्कि इनके प्रयोग की तकनीकें भी विकसित कर लीं। तंत्र विद्या प्रत्येक पदार्थ को ऊर्जा स्रोत के रूप में देखती और मानती है। और इसके व्यावहारिक जीवन में प्रयोग की तकनीकों के अनुसंधान में निरत रहती है।

तंत्र अपने सिद्धान्त एवं प्रयोग में सम्पूर्ण विज्ञान है। जिन्हें इसकी वैज्ञानिकता पर संदेह होता है, उन्हें विज्ञान एवं वैज्ञानिकता की इबारत को नये सिरे से पढ़ना-सीखना चाहिए। सार्थक वैज्ञानिक दृष्टि यह कहती है कि सिद्धान्त

की प्रायोगिक पड़ताल किये बगैर उसे नकारा नहीं जाना चाहिए। वैज्ञानिक दृष्टि कोण में किसी आग्रह या मान्यताओं का कोई स्थान नहीं है। यहाँ प्रायोगिक निष्कर्ष ही सब कुछ होते हैं। यहाँ प्रत्यक्षीकरण ही सिद्धान्तों का आधार बनते हैं। जो विज्ञान के दर्शन को स्वीकार करते हैं। तंत्र विद्या उनके लिए नये अनुसंधान क्षेत्र के द्वार उन्मुक्त करती है। उन्हें चुनौती देती है कि आओ, प्रयोग करो और परखो कि सच क्या है? हाँ जो सच मिले उसे स्वीकारने में शरमाना और हिचकिचाना मत। मानवता की भलाई के लिए इनका प्रयोग करना।

अध्यात्म चिकित्सा के विशेषज्ञ सदियों से यही करते आ रहे हैं और इन क्षणों में भी यही कर रहे हैं। तंत्र का समूचा विज्ञान मूल रूप से पाँच तत्त्वों पर टिका हुआ है। जिस तरह से पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं आकाश इन पाँच तत्त्वों से सृष्टि बनती है, उसी तरह से १. पदार्थ, २. स्थान, ३. शब्द, ४. अंक एवं ५. काल, इन पाँच अवयवों के सहारे तंत्र की वैज्ञानिक प्रक्रिया क्रियाशील होती है। तंत्र के क्षेत्र में इन पाँचों का अपना विशिष्ट अर्थ है। जिसे जानकर ही इसके प्रयोग किये जा सकते हैं। इस क्रम में सबसे पहला है पदार्थ। इस सम्बन्ध में आधुनिक वैज्ञानिकों की भाँति तंत्र विशेषज्ञ भी मानते हैं कि ब्रह्माण्डीय ऊर्जा की विभिन्न धाराओं ने एक विशिष्ट क्रम से मिलकर इस सृष्टि के विभिन्न पदार्थों की सृष्टि की है। इस सृष्टि का प्रत्येक अवयव भले ही वह वस्तु हो या प्राणी अथवा वनस्पति ऊर्जा का ही सघन रूप है।

जगत् और जीवन की इस सच्चाई को स्वीकारते तो वैज्ञानिक भी हैं, पर वे सृष्टि के प्रत्येक अवयव को समपूर्णतया या आँशिक रूप से ऊर्जा में परिवर्तित करने की कला नहीं जानते। लेकिन तांत्रिक ऐसा करने में सक्षम होते हैं। वे अपने प्रयोगों में सृष्टि के प्रत्येक अवयव का चाहे वह जीवित हो या मृत उसमें निहित ऊर्जा का इस्तेमाल कर सकते हैं। वृक्षों की जड़ें या पत्तियाँ, पशु-पक्षियों एवं मनुष्यों के नाखून या बाल तक में निहित ऊर्जा का वह समुचित प्रयोग कर लेते हैं। इन प्रयोगों में दूसरा क्रम स्थान का है। विशेषज्ञों का मानना है कि ब्रह्माण्डीय ऊर्जाधाराएँ प्रत्येक स्थान पर एक सुनिश्चित रीति से केन्द्रीभूत होती

हैं। इसलिए किस ऊर्जा का किस तरह से क्या उपयोग करना है, उसी क्रम में स्थल का चयन किया जाता है। यह स्थान मंदिर, देवालय भी हो सकता है और पीपल, वट आदि वृक्षों की छाँव भी अथवा नदी का किनारा या श्मशान भी हो सकता है।

तंत्र विज्ञान में तीसरा किन्तु सबसे महत्त्वपूर्ण शब्द है। शब्द की तन्मात्रा आकाश है। आकाश परम तत्त्व है, इसी से अन्य तत्त्व उपजे हैं। इसी वजह से तंत्र ने आकाश तत्त्व को अपनी साधना के आधार के रूप में स्वीकारा है। शब्द से बने बीजाक्षर एवं मंत्राक्षरों के सविधि प्रयोग से तंत्र विशेषज्ञ ब्रह्माण्ड की ऊर्जाधाराओं की दिशा को नियंत्रित एवं नियोजित करते हैं। पढ़ने वाले भले इसे असम्भव माने, पर ऐसा होता है। इसे कोई भी अनुभव कर सकता है। तंत्र विद्या में शब्द के प्रयोग अतिरहस्यमय हैं और तुरन्त प्रभाव प्रकट करने वाले हैं। इसमें कोई बीजाक्षर तो ऐसे हैं जो एक-डेढ़ अक्षर के होते हुए भी सिद्ध हो जाने पर कुछ ही सेकण्डों में चमत्कार पैदा करने लगते हैं।

इस क्रम में चौथे तत्त्व के रूप में अंक का स्थान है। शब्दों की भाँति अंक भी तंत्र विद्या में महत्त्व रखते हैं। इन अंकों और कुछ निश्चित रेखा कृतियों के संयोग से यंत्रों का निर्माण होता है। इन यंत्रों की पूजा-प्रतिष्ठा एवं सविधि साधना के द्वारा विशिष्ट ऊर्जाधारा को इसमें केन्द्रित किया जाता है। इसी को यंत्र की जागृति कहते हैं। ऐसा होने पर फिर यंत्र ट्रांसफार्मर जैसा काम करने लगता है, यानि कि वह अपने में केन्द्रित ऊर्जा को काम्य प्रयोजन की पूर्ति के योग्य बनाता है। इस विज्ञान का पाँचवा तत्त्व है काल, जिस पर सारी प्रयोग प्रक्रिया निर्भर करती है। इसके अन्तर्गत यह जानना होता है कि उपरोक्त सभी चारों तत्त्वों का संयोग कब-किन विशेष क्षणों में किया जाय।

इस प्रवाहमान सृष्टि में इसमें संव्याप्त ऊर्जा धाराएँ भी प्रवाहित हैं। इनमें से प्रत्येक की स्थिति, क्षमता, प्रकृति, दिशा सभी कुछ अलग है। कुछ निश्चित क्षणों में एक विशिष्ट रीति से इनका मिलन होता है। इन पलों में इनके विशेष प्रभाव पदार्थ पर भी पड़ते हैं और स्थान पर भी। मंत्र या यंत्र साधना भी इससे प्रभावित होती हैं। यही वजह है कि विशेष साधना के लिए विशेष क्षणों का

चयन करना पड़ता है। जैसे ग्रहण का समय, दीवाली या होली की रातें अथवा फिर शिवरात्रि या नवरात्रि के अवसर। कुछ विशेष योग भी इसमें उपादेय माने गये हैं। जैसे- गुरुपुण्य, रविपुण्य योग, सर्वार्थ सिद्धि, अमृतसिद्धि योग। इन पुण्य क्षणों में तंत्र तकनीकें शीघ्र फलदायी होती हैं।

जिन्हें इन सबका सम्पूर्ण ज्ञान होता है, वही अपनी आध्यात्मिक चिकित्सा में तंत्र की तकनीकों का प्रयोग करने में सक्षम हो पाते हैं। तांत्रिकों के आराध्य बाबा कीनाराम इस प्रक्रिया के परम विशेषज्ञ थे। उनके बारे में कहा जाता है कि जो बाबा विश्वनाथ कर सकते हैं, वही बाबा कीनाराम भी कर सकते हैं। अपने बारे में इस उक्ति पर वह हँसते हुए कहते हैं-अरे! यहाँ है ही क्या रे, यहाँ सब तो कणों की धूल का बवण्डर है। महामाया की ऊर्जा का खेल भर है। उन्होंने जो दिखा दिया है, मैं वही करता रहता हूँ। एक बार उनके यहाँ एक प्रौढ़ महिला अपने बीस वर्षीय बेटे को लेकर आयी। उसका लड़का लगभग मरणासन्न था। सभी चिकित्सकों ने उसे असाध्य घोषित कर दिया था। वह जब बाबा कीनाराम के पास आयी तो उन्होंने कहा-अभी जा शाम के समय आना। वह बहुत रोयी, गिड़गिड़ाई, पर वे नहीं माने। एक नजर सूरज की ओर देखा और शाम को आने को बोल दिया।

लाचार महिला क्या करती। रोती-कलपती चली गयी और शाम को पहुँची। बाबा कीनाराम ने वही घाट के पास से एक पत्ती तोड़ी और उसका रस उस युवक के मुँह में निचोड़ दिया। सभी को भारी अचरज तब हुआ जब वह मरणासन्न युवक उठ बैठा। उपस्थित जन उनकी जयकार करने लगे। इस पर वह सभी को डपटते हुए बोले- अरे जय बोलते हो तो महाकाल की बोलो। इस क्षण की बोलो। इस क्षण का विशेष महत्त्व है। इसमें प्रयोग किया जाने वाली औषधि एवं मंत्र मुर्दे में भी जान डाल सकती है। दरअसल यह बाबा कीनाराम के द्वारा प्रयोग की गई चिकित्सा की विशेष विधि थी, जो मंत्र चिकित्सा पर आधारित थी। इसके सफल प्रयोग ने उस युवक को नवजीवन दे दिया।



मंत्रविद्या असम्भव को सम्भव बनाती है

मंत्र चिकित्सा अध्यात्म विद्या का महत्त्वपूर्ण आयाम है। इसके द्वारा असाध्य रोगों को ठीक किया जा सकता है। कठिनतम परिस्थितियों पर विजय पायी जा सकती है। व्यक्तित्व की कैसी भी विकृतियाँ व अवरोध दूर किये जा सकते हैं। अनुभव कहता है कि मंत्र विद्या से असम्भव-सम्भव बनता है, असाध्य सहज साध्य होता है। जो इस विद्या के सिद्धान्त एवं प्रयोगों से परिचित हैं वे प्रकृति की शक्तियों को मनोनुकूल मोड़ने में समर्थ होते हैं। प्रारब्ध उनके वशवर्ती होता है। जीवन की कर्मधाराएँ उनकी इच्छित दिशा में मुड़ने और प्रवाहित होने के लिए विवश होती हैं। इन पंक्तियों को पाठक अतिशयोक्ति समझने की भूल न करें। बल्कि इसे विशिष्ट साधकों की कठिन साधना का सार निष्कर्ष मानें।

मंत्र है क्या ? तो इसके उत्तर में कहेंगे-'मननात् त्रायते इति मंत्र:' जिसके मनन से त्राण मिले। यह अक्षरों का ऐसा दुर्लभ एवं विशिष्ट संयोग है, जो चेतना जगत् को आन्दोलित, आलोड़ित एवं उद्वेलित करने में सक्षम होता है। कई बार बुद्धिशील व्यक्ति मंत्र को पवित्र विचार के रूप मं परिभाषित करते हैं। उनका ऐसा कहना-मानना गलत नहीं है। उदाहरण के लिए गायत्री महामंत्र सृष्टि का सबसे पवित्र विचार है। इसमें परमात्मा से सभी के लिए सद्बुद्धि एवं सन्मार्ग की प्रार्थना की गयी है। लेकिन इसके बावजूद इस परिभाषा की सीमाएँ सँकरी हैं। इसमें मंत्र के सभी आयाम नहीं समा सकते। मंत्र का कोई अर्थ हो भी सकता है और नहीं भी। यह एक पवित्र विचार हो भी सकता है और नहीं भी। कई बार इसके अक्षरों का संयोजन इस रीति से होता है कि उससे कोई अर्थ प्रकट होता है और कई बार यह संयोजन इतना अटपटा होता है कि इसका कोई अर्थ नहीं खोजा जा सकता।

दरअसल मंत्र की संरचना किसी विशेष अर्थ या विचार को ध्यान में रख कर की नहीं जाती। इसका तो एक ही मतलब है-ब्रह्माण्डीय ऊर्जा की किसी

विशेष धारा से सम्पर्क, आकर्षण, धारण और उसके सार्थक नियोजन की विधि का विकास है। मंत्र कोई भी हो वैदिक अथवा पौराणिक या फिर तांत्रिक इसी विधि के रूप में प्रयुक्त होते हैं। इस क्रम में यह भी ध्यान रखने की बात है कि मंत्र की संरचना या निर्माण कोई बौद्धिक क्रियाकलाप नहीं है। कोई भी व्यक्ति भले ही कितना भी प्रतिभावान् या बुद्धिमान क्यों न हो, वह मंत्रों की संरचना नहीं कर सकता। यह तो तप साधना के शिखर पर पहुँचे सूक्ष्म दृष्टाओं व दिव्यदर्शियों का काम है।

ये महासाधक अपनी साधना के माध्यम से ब्रह्माण्डीय ऊर्जा की विभिन्न व विशिष्ट धाराओं को देखते हैं। इनकी अधिष्ठातृ शक्तियाँ जिन्हें देवी या देवता कहा जाता है, उन्हें प्रत्यक्ष करते हैं। इस प्रत्यक्ष के प्रतिबिम्ब के रूप में मंत्र का संयोजन उनकी भावचेतना में प्रकट होता है। इसे ऊर्जाधारा या देवशक्ति का शब्द रूप भी कह सकते हैं। मंत्र विद्या में इसे देव शक्ति का मूल मंत्र कहते हैं। इस देवशक्ति के ऊर्जा अंश के किस आयाम को और किस प्रयोजन के लिए ग्रहण-धारण करना है उसी के अनुरूप इस देवता के अन्य मंत्रों का विकास होता है। यही कारण है कि एक देवता या देवी के अनेकों मंत्र होते हैं। यथार्थ में इनमें से प्रत्येक मंत्र अपने विशिष्ट प्रयोजन को सिद्ध व सार्थक करने में समर्थ होते हैं।

प्रक्रिया की दृष्टि से तो मंत्र की कार्यशैली अद्‌भुत है। इसकी साधना का एक विशिष्ट क्रम पूरा होते ही यह साधक की चेतना का सम्पर्क ब्रह्माण्ड की विशिष्ट ऊर्जा धारा या देवशक्ति से कर देता है। यह इसके कार्य का एक आयाम है। इसके दूसरे आयाम के रूप में यह साथ ही साथ साधक के अस्तित्व या व्यक्तित्व को उस विशिष्ट ऊर्जाधारा अथवा देव शक्ति के लिए ग्रहणशील बनाता है। इसके लिए मंत्र साधना द्वारा साधक के कतिपय गुह्य केन्द्र जागृत हो जाते हैं। ऐसा होने पर ही वह सूक्ष्म शक्तियों को ग्रहण करने-धारण करने एवं उनका नियोजन करने में समर्थ होता है। ऐसा होने पर ही कहा जाता है कि मंत्र सिद्ध हो गया।

यह मंत्र सिद्धि केवल मंत्र को रटने या दुहराने भर से नहीं मिलती। और

यही वजह है कि सालों-साल किसी मंत्र की साधना करने वालों को बुरी तरह से निराश होना पड़ता है। पहले तो उनको कोई फल ही नहीं मिलता और यदि किसी तरह कुछ मिला भी तो वह काफी नगण्य व आधा-अधूरा सा होता है। इस स्थिति के लिए दोष मंत्र का नहीं, स्वयं साधक का है। ध्यान रहे किसी मंत्र की साधना में साधक को मंत्र की प्रकृति के अनुसार अपने जीवन की प्रकृति बनानी पड़ती है। मंत्र साधना के विधि-विधान के सम्यक् निर्वाह के साथ उसे अपने खानपान, वेश-विन्यास, आचरण-व्यवहार देवता या देवी की प्रकृति के अनुसार ढालना पड़ता है। उदाहरण के लिए कहीं तो श्वेत वस्त्र, श्वेत खानपान आवश्यक होते हैं, तो कहीं यह रंग पीला हो जाता है। आचरण-व्यवहार में भी पवित्रता का सम्यक् समावेश जरूरी है।

यदि सब कुछ सही रीति से निभाया जाय तो मंत्र का सिद्ध होना अनिवार्य है। मंत्र सिद्ध होने का मतलब है कि मंत्र की शक्तियों का साधक की चेतना में क्रियाशील हो जाना। यह स्थिति कुछ इसी तरह से है जैसे कि कोई श्रमशील किसान किसी महानदी से पर्याप्त बड़ी नहर खोदकर उसका पानी अपने खेतों तक ले आये। जेसे नदी से नहर आने पर किसान के समूचे क्षेत्र में जलधाराएँ उफनती-उमड़ती रहती हैं। उसी तरह से मंत्र सिद्ध होने पर देव शक्ति का ऊर्जा प्रवाह हर पल-हर क्षण साधक की अन्तर्चेतना में उफनता-उमड़ता रहता है। इसका वह मनचाहे ढंग से अपने संकल्प के अनुसार नियोजन कर सकता है। मंत्र की शक्ति व प्रकृति के अनुसार वह असाध्य बीमारियों को ठीक कर सकता है।

पश्चिम बंगाल के स्वामी निगमानन्द ऐसे ही मंत्र सिद्ध महात्मा थे। उन्होंने अनेकों मंत्रों-महामंत्रों को सिद्ध किया था। उनकी वाणी, संकल्प, दृष्टि व स्पर्श सभी कुछ चमत्कारी थे। मरणासन्न रोगी उनके संकल्प मात्र से ठीक हो जाते थे। एक बार ये महात्मा सुमेरपुकुर नाम के गाँव में गये। साँझ हो चुकी थी, आसमान से अँधियारा झरने लगा था। गाँव के जिस छोर पर वह पहुँचे वहाँ सन्नाटा था। आसपास से गुजरने वाले उदास और मायूस थे। पूछने पर पता चला कि गाँव के सबसे बड़े महाजन ईश्वरधर का सुपुत्र महेन्द्रलाल महीनों से

बीमार है। आज तो उसकी स्थिति कुछ ऐसी है कि रात कटना भी मुश्किल है। गाँव के वृद्ध कविराज ने सारी आशाएँ छोड़ दी हैं।

इस सूचना के मिलने पर वह ईश्वरधर के घर गये। घरवालों ने एक संन्यासी को देखकर यह सोचा कि ये भोजन व आश्रय के लिए आये हैं। उन्होंने कहा-महाराज आप हमें क्षमा करें, आज हम आप की सेवा करने में असमर्थ हैं। उनकी ये बातें सुनकर निगमानन्द ने कहा- आप सब चिंता न करें। हम आपके यहाँ सेवा लेने नहीं, बल्कि सेवा देने आये हैं। निगमानन्द की बातों का घर वाले विश्वास तो न कर पाये, किन्तु फिर भी उन्होंने उनकी इच्छा के अनुसार आसन, जलपात्र, पुष्प, धूप आदि लाकर रख दिये। निगमानन्द ने मरणासन्न रोगी के पास आसन बिछाया, धूप जलाई और पवित्रीकरण के साथ आँख बन्द करके बैठ गये। घर के लोगों ने देखा कि उनके होंठ धीरे-धीरे हिल रहे हैं।

थोड़ी देर बाद मरणासन्न महेन्द्रलाल ने आँखें खोल दी। कुछ देर और बीतने पर उसके चेहरे का रंग बदलने लगा। आधा-पौन घण्टे में तो वह उठकर अपने बिछौने पर बैठ गया। और उसने पानी माँग कर पिया। उस रात उसे अच्छी नींद आयी। दूसरे दिन उसने अपनी पसन्द का खाना खाया। इस अनोखे चमत्कार पर सभी चकित थे। गाँव के वृद्ध वैद्य ने पूछा-यह किस औषधि से हो सका। निगमानन्द बोले-वैद्यराज यह औषधि प्रभाव से नहीं मंत्र के प्रभाव से हुआ है। यह जगन्माता के मंत्र का असर है। जब औषधियाँ विफल हो जाती हैं। सारे लौकिक उपाय असफल हो जाते हैं, तब एक मंत्र ही है जो मरणासन्न में जीवन डालता है। मंत्र चिकित्सा कभी भी विफल नहीं होती है। हाँ इसके साथ तप के प्रयोग जुड़े होने चाहिए।



व्यक्तित्व की समग्र साधना हेतु चान्द्रायण तप

तप के प्रयोग अद्भुत हैं और इनके प्रभाव असाधारण। इन्हें व्यक्तित्व की समग्र चिकित्सा के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। चिकित्सा के अभाव में रोगी शक्तिहीन, दुर्बल, निस्तेज रहता है। लेकिन चिकित्सा के प्रभाव से उसकी शक्तियाँ क्रियाशील हो जाती हैं। दुर्बलता सबलता में बदलती है और व्यक्तित्व का तेजस् वापस लौट आता है। ये परिवर्तन तो सामान्य चिकित्सा क्रम के हैं, जो अपेक्षाकृत आँशिक एवं एकाँगी होते हैं। तप में तो इस प्रक्रिया की स्वाभाविक समग्रता झलकती है। इससे न केवल शारीरिक स्वास्थ्य एवं बाह्य परिस्थितियाँ सँवरती हैं, बल्कि आन्तरिक जीवन का भी परिमार्जन-परिष्कार होता है। इस प्रक्रिया से अन्तर्चेतना का समूचा साँचा बदल जाता है। रूचियाँ, प्रवृत्तियाँ, चिंतन की दशा और दिशा सभी रूपान्तरित हो जाते हैं। रोग कोई भी हो, तप के प्रयोगों से इनका अचूक समाधान होता है।

ऐसे अद्भुत व आश्चर्यकारी प्रभावों के बावजूद तप के प्रयोगों के बारे में अनेकों भ्रान्तियाँ प्रचलित हैं। कुछ लोग भूखे रहने को तप मानते हैं, तो कुछ के लिए सिर के बल खड़े होना या एक पाँव के बल पर बहुत समय तक खड़े रहना तप है। ऐसे लोग न तो यह जानते हैं कि तप क्या है ? और न उन्हें यह मालूम है कि उन्हें क्यों व किसलिए करना है ? इस सम्बन्ध में कुछ की भ्रान्ति तो इतनी गहरी होती है कि वह कुछ उल्टी-सीधी क्रियाएँ करके लोगों को रिझाने को ही तप मान लेते हैं। जबकि वास्तविक अर्थों में किसी तरह के पाखण्ड और आडम्बर का तप से कोई लेना-देना नहीं है। यह तो विशुद्ध रूप से व्यक्तित्व की समग्र चिकित्सा की वैज्ञानिक पद्धति है।

इस समूची प्रक्रिया के तीन चरण हैं-१. संयम, २. परिशोधन, ३. जागरण। ये तीनों ही चरण क्रमिक होने के साथ एक-दूसरे पर आधारित हैं। इनमें से पहले क्रम में संयम तप की समूची प्रक्रिया का आधार है। इसी बिन्दु से तप के

प्रयोग का प्रारम्भ होता है। इस प्रारम्भिक बिन्दु में तपस्वी को अपनी सामान्य जीवन ऊर्जा का संरक्षण करना होता है। वह उन नीति-नियमों व अनुशासनों का श्रद्धा सहित पालन करता है जो क्रिया, चिंतन एवं भावना के झरोखे से होने वाली ऊर्जा की बर्बादी को रोकते हैं। इस सच्चाई को हम सभी जानते हैं कि स्वास्थ्य सम्बन्धी सभी तरह की परेशानियाँ चाहे वे शारीरिक हो या फिर मानसिक किसी न किसी तरह के असंयम के कारण होती हैं। असंयम से जीवन की प्रतिरोधक शक्ति में कमी आती है और बीमारियाँ घेर लेती हैं।

जबकि संयम प्रतिरोधक शक्ति की लौह दीवार को मजबूत करता है। संयम से जीवन इतना शक्तिशाली होता है कि किसी भी तरह के जीवाणु-विषाणु अथवा फिर नकारात्मक विचार प्रवेश ही नहीं पाते हैं। तप के प्रयोग का यह प्रथम चरण प्राणबल को बढ़ाने का अचूक उपाय है। इससे संरक्षित ऊर्जा स्वस्थ जीवन का आधार बनती है। जिनकी तप में आस्था है वे नित्य-नियमित संयम की शक्तियों को अनुभव करते हैं। मौसम से होने वाले रोग, परिस्थितियों से होने वाली परिशोनियाँ उन्हें छूती ही नहीं। इससे साधक में जो बल बढ़ता है, उसी से दूसर चरण को पूरा करने का आधार विकसित होता है। परिशोधन के इस दूसरे चरण में तप की आन्तरिकता प्रकट होती है। इसी विन्दु पर तप के यथार्थ प्रयोगों की शुरुआत होती है। मृदु चन्द्रायण, कृच्छ चन्दायण के साथ की जाने वाली गायत्री साधनाएँ इसी शृंखला का एक हिस्सा है। विशिष्ट मुहूर्तों, ग्रहयोगों, पर्वों पर किये जाने वाले उपवास का भी यही अर्थ है।

परिशोधन किस स्तर पर और कितना करना है, इसी को ध्यान में रखकर इन प्रयोगों का चयन किया जाता है। इसके द्वारा इस जन्म में भूल से या प्रमादवश हुए दुष्कर्मों का नाश होता है। इतना ही नहीं विगत जन्मों के दुष्कर्म, प्रारब्धजनित दुर्योगों का इस प्रक्रिया से शमन होता है। तप के प्रयोग में यह चरण महत्त्वपूर्ण है। इस क्रम में क्या करना है, किस विधि से करना है, इसका निर्धारण कोई सफल आध्यात्मिक चिकित्सक ही कर सकता है। जिनकी पहुँच उच्चस्तरीय साधना की कक्षा तक है वे स्वयं भी अपनी अन्तर्दृष्टि के सहारे इसका निर्धारण करने में समर्थ होते हैं। अगर इसे सही ढंग से किया जा सके तो

तपश्चर्या में प्रवीण साधक अपने भाग्य एवं भविष्य को बदलने, उसे नये सिरे से गढ़ने में समर्थ होता है।

तीसरे क्रम में जागरण का स्थान है। यह तप के प्रयोग की सर्वोच्च कक्षा है। इस तक पहुँचने वाले साधक नहीं, सिद्ध जन होते हैं। परिशोधन की प्रक्रिया में जब सभी कषाय-कल्मष दूर हो जाते हैं तो इस अवस्था में साधक की अन्तर्शक्तियाँ विकसित होती हैं। इनके द्वारा वह स्वयं के साथ औरों को जान सकता है। अपने संकल्प के द्वारा वह औरों की सहायता कर सकता है। इस अवस्था में पहुँचा हुआ व्यक्ति स्वयं तो स्वस्थ होता ही है औरों को भी स्वास्थ्य का वरदान देने में समर्थ होता है। जागरण की इस अवस्था में तपस्वी का सीधा सम्पर्क ब्रह्माण्ड की विशिष्ट शक्तिधाराओं से हो जाता है। इनसे सम्पर्क, ग्रहण, धारण व नियोजन की कला उसे सहज ज्ञात हो जाती है। इस अवस्था में वह अपने भाग्य का दास नहीं, बल्कि उसका स्वामी होता है। उसमें वह सामर्थ्य होती है कि स्वयं के भाग्य के साथ औरों के भाग्य का निर्माण भी कर सके।

ब्रह्मर्षि परम पूज्य गुरूदेव ने अपना समूचा जीवन तप के इन उच्चस्तरीय प्रयोगों में बिताया। उन्होंने अपने समूचे जीवन काल में कभी भी तप की प्रक्रिया को विराम् नहीं दिया। अपने अविराम तप से उन्होंने जो प्राण ऊर्जा इकट्ठी की उसके द्वारा उन्होंने लाखों लोगों को स्वास्थ्य के वरदान दिये। इतना ही नहीं उनने कई कुमार्गगामी-भटके हुए लोगों को तप के मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित भी किया। ऐसा ही एक उदाहरण गुजरात के सोमेश भाई पटेल का है। आर्थिक रूप से समृद्ध होते हुए भी ये सज्जन शराब, सिगरेट, जुआ, नशा जैसी अनेकों बुरी आदतों की गिरफ्त में थे। इन आदतों के कारण उनके घर में तो कलह रहती ही थी, स्वयं के स्वास्थ्य में भी घुन लग चुका था। उच्च रक्तचाप, मधुमेह के साथ कैंसर के लक्षण भी उनमें उभर आये थे।

ऐसी अवस्था में वे गुरुदेव के पास आये। गुरुदेव ने उनकी पूरी विषद् कथा धैर्य से सुनी। सारी बातें सुनकर वह बोले बेटा! मैं तुझे ठीक तो कर सकता हूँ पर इसके लिए तुझे मेरी फीस देनी पड़ेगी। 'फीस' इस शब्द ने सोमेश

भाई पटेल को पहले तो चौंकाया, लेकिन बाद में सम्हलते हुए बोले-आप जो माँगेंगे मैं दूँगा। पहले सोच ले- गुरुदेव ने उन्हें चेताया। इस बात के उत्तर में सोमेश भाई थोड़ा सहमे, पर उन्होंने कहा यही कि ठीक है आप जो भी माँगेंगे मैं दूँगा। तो ठीक है पहले तू यहीं शान्तिकुञ्ज में रहकर एक महीने चन्द्रायण करते हुए गायत्री का अनुष्ठान कर। इसके बाद महीने भर बाद मिलना। गुरुदेव का यह आदेश यूँ तो उनकी प्रकृति के विरुद्ध था, फिर भी उन्होंने उनकी बात स्वीकार की। उन दिनों शान्तिकुञ्ज में चान्द्रायण सत्र चल रहा था। वह भी उसमें भागीदार हो गये। चान्द्रायण तप करते हुए एक महीना बीत गया। इस एक महीने में उनके शरीर व मन का आश्चर्यजनक ढंग से कायाकल्प हो गया।

इसके बाद जब वह गुरुदेव से मिलने गये तो उन्होंने कहा-तू अब ठीक है, आगे भी ठीक रहेगा। गुरुजी आप की फीस ? सोमेश भाई की इस बात पर वह हँसे और बोले-सो तो मैं लूँगा ही, छोड़ूँगा नहीं। मेरी फीस यह है कि तू प्रत्येक साल में चार महीने आश्विन, चैत्र, माघ, आषाढ़ चन्द्रायण करते हुए गायत्री साधना करना। साधक बनकर के जीना। जो साधक के योग्य न हो वैसा तू कुछ भी नहीं करना। बस यही मेरी फीस है। वचन के धनी सोमेश भाई ने अपनी फीस पूरी ईमानदारी से चुकायी। इसी के साथ उन्हें समग्र स्वास्थ्य का अनुदान भी मिला। साथ ही उन्हें लगने लगा-असली सुख-भोग विलास में नहीं, प्रेममयी भक्ति में है।



प्रत्येक कर्म बनें भगवान की प्रार्थना

प्रेममयी भक्ति की प्रक्रिया प्रार्थना में है। प्रेम यदि अपने प्यारे प्रभु से है, उनके प्रति भक्ति सघन है, तो प्रार्थना स्वतः स्फुरित होने लगती है। प्रार्थना के ये स्वर न केवल देह, बल्कि सम्पूर्ण जीवन की आध्यात्मिक चिकित्सा करते हैं। रोग मिटते हैं, शोक दूर होते हैं, संकट कटते हैं, सन्ताप शान्त होते हैं। जिस समय हमारे चारों ओर पीड़ा-परेशानी और विपत्ति के बादल मण्डराने लगते हैं, अन्धकार छा जाता है, कोई साथी नहीं रहता, उस समय यदि हमारे अन्तःकरण में थोड़ा सा भी प्रभु विश्वास जग सका, तो हम बरबस उन्हें पुकार उठते हैं, रक्षा करो भगवन्, तुम्हारे सिवा और कोई नहीं है प्रभु।

और तब हममें से बहुतों का यह अनुभव है कि पुकार लगाते ही, ऐसे विचित्र ढंग से हमारी रक्षा होती है कि जिसकी हम कल्पना तक नहीं कर सकते। भयावह रोग, कठिन शोक, चमत्कारी ढंग से अनायास ही दूर हो जाते हैं। ऐसा इसलिए होता है, क्योंकि भगवान् हमसे दूर नहीं है। वे भक्त वत्सल भगवान् अपने सम्पूर्ण ज्ञान, अनन्त सामर्थ्य, भावभरा प्रेम लिए प्रति पल हमारे साथ है। बस उनसे हृदय का तार जुड़ते ही उनकी सम्पूर्ण शक्ति हमारी रक्षा के लिए, चिकित्सा के लिए, दुःख-विषाद दूर करने के लिए प्रकट हो जाती है। जहाँ उनकी अनन्त शक्ति, अपरिसीम प्रेम को व्यक्त होने का अवसर मिलता है कि काले बादल बिखर जाते हैं, निर्मल प्रकाश छा जाता है। प्यार देने वाले साथी आ पहुँचते हैं और पथ निष्कंटक हो जाता है। हम भी अपनी राह पर चल पड़ते हैं।

किन्तु प्यारे प्रभु से अपने हृदय का यह संयोग स्थायी नहीं हो पाता। प्रार्थना का यह चमत्कार अनुभव करने के बावजूद भी हमारा जीवन भगवद् प्रार्थनामय नहीं बनता। अनुकूल परिस्थिति आते ही हम अपने प्यारे प्रभु को, उनकी भक्ति को भूलने लगते हैं। इससे उपजी प्रार्थना की प्रक्रिया बिसरने लगती है। यहाँ तक कि प्रभु की प्रार्थना ऐसी अद्भुत चमत्कारी है, यह याद भी

धीरे-धीरे धुँधली होने लगती है।

कैसे सफल होती है प्रार्थना? किस विधि से होती है प्रार्थना से आध्यात्मिक चिकित्सा? क्या है प्रार्थना की प्रक्रिया का विज्ञान? ऐसे सवाल हमारे मन-मस्तिष्क में इस अनुभूति के बाद भी बने रहते हैं। इनके जवाब हममें से किसी को दुनियादारी की झंझटों में ढूँढे नहीं मिलते। हालांकि यह ज्यादा कठिन नहीं है। इन्हें ढूँढा-खोजा और जाना जा सकता है। यही नहीं हममें से हर एक प्रार्थना के विज्ञान से परिचित हो सकता है।

इस सम्बन्ध में बात इतनी सी है कि हमारा सामान्य जीवन व्यावहारिक धरातल पर बीतता है। हममें से प्रायः ज्यादातर लोग स्थूल देह की अनुभूतियों एवं संवेदनों में जीते हैं। गाढ़े सोच-विचार के अवसर भी प्रायः जीवन में कम ही आते हैं। वैचारिक एकाग्रता या तन्मयता यदि होती भी है, तो केवल कुछ पलों के लिए। और यह भी सांसारिक-सामाजिक एवं बाहरी जीवन के विषयों को लेकर होता है। आन्तरिक चेतना से जुड़ने के तो अवसर ही नहीं आते। रही बात भावनाओं की तो यहाँ हम सबसे ज्यादा अस्थिर और उथले साबित होते हैं। हमारा प्रेम सदा ही ईर्ष्या, द्वेष एवं प्रपंच से कलुषित व मैला होता है। हमेशा रूठने-भटकने के कारण हमारी भावनाएँ पल-पल टूटती-बिखरती और विलीन होती रहती हैं। हम न तो इनके सत्य से परिचित हो पाते हैं और न शक्ति से।

लेकिन साधारण जीवन के धरातल पर जिया जाने वाला यह सच विपत्ति के क्षणों में बदल जाता है। रोग-शोक और संकट के भयावह पल हमें व्यावहारिक जीवन से मुख मोड़ने के लिए विवश करते हैं। जब एक-एक करके सभी से हमें निराशा मिलती हैं, तब हम अपनी गहराइयों में सहारा तलाशते हैं। हमारी अन्तुर्मखी चेतना स्थूल जगत् से सूक्ष्म जगत् में प्रवेश करती है। कहीं कोई अपना न पाकर विकल भावनाएँ पहले तो आन्दोलित, आलोड़ित व उद्वेलित होती हैं, फिर एकाग्र होने लगती है। हमारे अन्तर्मुखी विचार इस एकाग्रता को अधिक स्थिर करते हैं। ऐसे में संकट भरी परिस्थितियाँ बार-बार हमें चेताती हैं, सोच लो भगवान् के सिवा अब अपना कोई नहीं।

व्यावहारिक जीवन का पल हमारे स्थूल शरीर का तल है। वैचारिक प्रगाढ़ता हमें सूक्ष्म चेतना की अनुभूति देती है। भावनात्मक एकाग्रता में हम कारण शरीर में जीते हैं। यहाँ हम जितना अधिक स्थिर एकाग्र होते हैं, उतना ही अधिक भावनात्मक ऊर्जा इकट्ठा होती है। हमारी श्रद्धा की परम सघनता में यह स्थिति अपने सर्वोच्च बिन्दु पर होती है। कारण शरीर के इस सर्वोच्च शिखर अथवा अपने अस्तित्त्व की चेतना के इस महाकेन्द्र में हम परम कारण को यानि कि स्वयं प्रभु का स्पर्श पाते हैं। हमारी श्रद्धा की सघनता में हुआ भावनात्मक ऊर्जा का विस्फोट हमें सर्वेश्वर की सर्वव्यापी चेतना से एकाकार कर देता है। इस स्थिति में हमारे जीवन में उन प्रभु का असीम ऊर्जा प्रवाह उमड़ता चला आता है। और फिर उनकी अनन्त शक्ति के संयोग से हमारे जीवन में सभी असम्भव सम्भव होने लगते हैं।

परन्तु विपत्ति के बादल छंटते ही हम पुनः अपने जीवन की क्षुद्रताओं में रस लेने लगते हैं। फिर से विषय-भोग हमें लुभाते हैं। लालसाओं की लोलुपता हमें ललचाती है। और हम अपनी भावचेतना के सर्वोच्च शिखर से पतित हो जाते हैं। प्रार्थना ने जो हमें उपलब्ध कराया था, वह फिर से खोने लगता है। हम सबके सामान्य जीवन का यही सच है। लेकिन सन्त या भक्त, जिनके भोगों की, लालसाओं की कोई चाहत नहीं है, वे हर पल प्रार्थना में जीते हैं उनकी भाव चेतना सदा उस स्थिति में होती है, जहाँ वह सर्वव्यापी परमेश्वर के सम्पर्क में रह सके। यही वजह है कि उनकी प्रार्थनाएँ कभी भी निष्फल नहीं होती हैं। प्रत्येक असम्भव उनके लिए हमेशा सदा सम्भव होता है। वे जिसके लिए भी अपने प्रभु से प्रार्थना करते हैं, उसी का परम कल्याण होता है।

यही कारण है कि प्रार्थनाशील मनुष्य आध्यात्मिक चिकित्सक होकर इस संसार में जीवन जीते हैं। हमने परम पूज्य गुरुदेव को इसी रूप में देखा और उनकी कृपा को अनुभव किया है। उन्होंने अपने जीवन की हर श्वास को प्रभु प्रार्थना बना लिया था। एक दिन जब वह बैठे थे, उनके श्री चरणों के पास हम सब भी थे। चर्चा साधना की चली तो उन्होंने कहा कि बेटा! सारा योग, जप, ध्यान एक तरफ और प्रार्थना एक तरफ। प्रार्थना इन सभी से बढ़-चढ़कर है।

इतना कहकर उन्होंने अपनी अनुभूति बताते हुए कहा- मैंने तो अपने प्रत्येक कर्म को भगवान् की प्रार्थना बना लिया है। बेटा यदि कोई तुमसे मेरे जीवन का रहस्य जानना चाहे तो उसे बताना, हमारे गुरुजी का प्रत्येक कर्म, उनके शरीर द्वारा की जाने वाली भगवान् की प्रार्थना था। उनके मन का चिन्तन मन से उभरने वाले प्रभु प्रार्थना के स्वर थे। उनकी भावना का हर स्पन्दन भावों से प्रभु पुकार ही थे। हमारे गुरुदेव का जीवन प्रार्थनामय जीवन था। इसलिए वे अपने भगवान् के साथ सदा घुल-मिलकर जीते थे। मीरा के कृष्ण की तरह उनके भगवान् उनके साथ, उनके आस-पास ही रहते थे। वे अपने भगवान् का कहा मानते थे, और भगवान् हमेशा उनका कहा करते थे।

यह कथन उनका है, जिन्हें हमने अपना प्रभु माना है। इस प्रार्थनामय जीवन के कारण ही उन्होंने असंख्य लोगों की आध्यात्मिक चिकित्सा की। एक बार उनके पास एक युवक आया। उसकी चिन्ता यह थी कि उसके पिता को कैंसर हो गया था। ज्यों ही उसने अपनी समस्या गुरुदेव को बतायी, वह बोले, बस बेटा, इतनी सी बात तू माँ से प्रार्थना कर। मैं भी तेरे लिए प्रार्थना करूँगा। डाक्टरों के लिए कोई चीज असम्भव हो सकती है। पर जगन्माता के लिए कुछ भी असम्भव नहीं है। और सचमुच ही उस युवक ने उनकी बात को गांठ बांध लिया। थोड़े दिनों बाद जब वह पुनः उनसे मिला तो उसने बताया कि सही में मां ने उसकी प्रार्थना सुनी ली। उसके पिता अब ठीक हैं। गुरुदेव कहते थे कि प्रार्थना करते समय हमें यह नहीं सोचना चाहिए कि अमुक काम असम्भव है। भला यह कैसे होगा ? बल्कि यह सोचना चाहिए भगवान् प्रत्येक असम्भव को सम्भव कर सकते हैं। प्रार्थना की इस प्रगाढ़ता एवं निरन्तरता में ध्यान के प्रयोगों की सफलता समायी है।



अंतर्मन की धुलाई एवं ब्राह्मीचेतना से विलय का नाम है - ध्यान

ध्यान के प्रयोग अध्यात्म चिकित्सा के लिए महत्त्वपूर्ण हैं। यदि कोई इन्हें सम्यक् रूप से जान ले- सीख ले तो वह स्वयं ही अपने व्यक्तित्व की चिकित्सा कर सकता है। ध्यान शब्द से बहुसंख्यक लोग सुपरिचित हो चले हैं। क्योंकि इन दिनों इसके बारे में बहुत कुछ कहा-सुना और लिखा-पढ़ा जा रहा है। किन्तु इसके अर्थ के बारे में, मर्म के बारे में प्रायः सभी अपरिचित हैं। इनमें वे भी शामिल हैं जो ध्यान के बारे में जानने और नियमित इसके अभ्यास का दावा करते हैं। यह अचरज भरा सच हो सकता है कई लोगों को नागवार लगे। फिर भी सत्य को कहा जाना चाहिए। यही सोचकर विनम्रतापूर्वक ये पंक्तियाँ लिखी गयी हैं, क्योंकि इनसे आत्मावलोकन में मदद मिलेगी और नए सिरे से ध्यान के बोध को पाया जा सकेगा।

ध्यान के प्रयोग में हम अपने विचारों और भावनाओं को रूपान्तरित करते हैं। इन्हें लयबद्ध करते हैं- स्वरबद्ध करते हैं। और फिर इस लय से हम अपने जीवन की खोई हुई लय को फिर से पाते हैं। बिखरे हुए स्वरों को, ध्यान के संगीत को सजाकर जिन्दगी का भूला हुआ गीत फिर से गाते हैं। दुःख-विषाद को आनन्द में बदलना, पतन के गर्त में गिरती जा रही जीवन की ऊर्जा का फिर से ऊर्ध्वारोहण करना ध्यान के प्रयोगों का ही सुफल है। बस हमें इन्हें करना आना चाहिए। ध्यान के अभाव में ही हम ब्राह्मी चेतना से अपना सामञ्जस्य गंवा बैठे हैं। ब्रह्माण्ड की अनन्त शक्तियों से विलग होकर हम निस्तेज और शक्तिहीन हो गए हैं। ध्यान के प्रयोग से यह योग पुनः सम्भव है।

यूं तो ध्यान अपने में गहरी आध्यात्मिक प्रक्रिया है। प्रत्येक धर्म व पंथ के आचार्यों ने इसका विशद विवेचन किया है। इसकी प्रक्रिया, प्रभावों व परिणामों का बोध कराया है। महर्षि पतंजलि के योग सूत्र का तो यह केन्द्रीय

तत्त्व है। अष्टांग योग के आठ अंगों के क्रम में यह सातवें स्थान पर है। इसके पहले के छह अंग ध्यान की तैयारी के लिए है। और बाद का आठवां अंग ध्यान के परिणाम व सुफल बताने के लिए है। यह विवेचन कहीं भी और कितना भी क्यों न किया गया हो, पर उसका सार यही है कि हम अपने विचारों और भावनाओं को श्रेष्ठता-महानता और व्यापकता में एकाग्र करना सीखे। इसके माध्यम से व्यक्तित्व में ऐसे खिड़की- दरवाजे खोलें, जिनके माध्यम से ब्राह्मी चेतना का सुखद-सुरभित और निर्मल झोंका हमारे व्यक्तित्व में प्रवाहित हो सके।

ध्यान का यह रूप हमारे जीवन में भले न हो, पर कोई न कोई रूप तो है ही। और जैसा यह रूप है वैसा ही हमारा जीवन है। हमारे विचार और भावनाएँ प्रतिपल-प्रतिक्षण कहीं न कहीं तो एकाग्र होती हैं। यह बात अलग है कि यह एकाग्रता कभी द्वेष के प्रति होती है, कभी बैर के प्रति। कभी हम ईर्ष्या के प्रति एकाग्र होते हैं तो कभी लोभ-लालच के प्रति। यही नकारात्मक भाव, यही क्षुद्रताएँ हमारे ध्यान का विषय बनती हैं। और जैसा हमारा ध्यान वैसे ही हम बनते चले जाते हैं। कहीं हम अपने गहरे में इसे अनुभव करें तो यही पाएँगे कि ध्यान के इन नकारात्मक रूपों ने ही हमें रोगी व विषादग्रस्त बनाया। पल-पल भटकते हुए निषेधात्मक ध्यान के कारण ही हमारी यह दशा हुई है। इसकी चिकित्सा भी ध्यान ही है- सकारात्मक व विधेयात्मक ध्यान।

जब सही व सकारात्मक ध्यान की बात आती है, तो अनेको लोग सवाल उठाते हैं- कैसे करें ध्यान? मन ही नहीं लगता है। सच बात तो यह है कि उनका मन पहले से ही कहीं और लगा हुआ है। नकारात्मक क्षुद्रताओं में वह लिप्त है, अब सकारात्मक महानताएँ उसे रास नहीं आ रही। इस समस्या का हल यही है कि मन ने जिस विधि से गलत ध्यान सीखा है, उसी विधि से उसे सही ध्यान सीखना होगा। और यह विधि हमेशा से यह है कि जिस सत्य को, व्यक्ति को, विचार को हम लगातार याद करते हैं, अपने आप ही हमें उससे लगाव होने लगता है। यह लगाव धीरे-धीरे प्रगाढ़ प्रेम में बदलता है। उसी के प्रति हमारी श्रद्धा व आस्था पनपती है। यदि यही प्रक्रिया जारी रही तो इसकी

सघनता इतनी अधिक होती है कि दुनिया की बाकी चीजें अपने आप ही बेमानी हो जाती हैं। और सारे विचार और सम्पूर्ण भावनाएँ उसमें एक रस हो जाती हैं। यही भाव दशा तो ध्यान है। साथ ही यही ध्यान में मन लगने के सवाल का समाधान है।

ध्यान जिसका भी हम करते हैं, वह हमारे ईष्ट, आराध्य हो अथवा सद्‌गुरु या फिर कोई पवित्र विचार या भाव। उसके प्रति प्यार भरे अपनेपन से सोचें-याद करें। नियमित उसके लिए अपनी याद को प्रगाढ़ करें। यहाँ तक कि यह प्रगाढ़ता हमारी आस्था, श्रद्धा व प्रेम का रूप ले ले। फिर इस प्रेम से परिपूर्ण छवि को अपने शरीर के उच्चस्तरीय केन्द्रों यथा अनाहत चक्र, हृदय स्थान अथवा आज्ञा चक्र-मस्तक पर दोनों भौहों के बीच स्थापित करें। अब देखिए हमारी भावनाएँ एवं विचार स्वत: ही उस ओर मुड़ चलेंगे। प्रेम से पुलकित मन स्वत: ही उस ध्यान में डूबने लगेगा। और अपने आप ही व्यक्तित्व में सकारात्मक विचारों व भावनाओं की सघनता सधने लगेगी। सकारात्मक भावों व विचारों का यह सघन रूप औषधि की भाँति है, जिसका नियमित निरन्तर सेवन व्यक्तित्व को सब भाँति विकारों व विषादों से मुक्त कर देगा।

ध्यान की यह चिकित्सा प्रणाली सब भाँति अद्‌भुत है। इसके पहले चरण में अन्तर्चेतना एकाग्र होती है। इस एकाग्रता के सधने पर हमारी मानसिक क्षमताओं का विकास होता है। दूसरे चरण में यह एकाग्र अन्तर्चेतना-अन्तर्मुखी हो स्वयं ही गहराई में प्रवेश होती है। ऐसा होते ही अन्तर्मन, अचेतन मन धुलने लगता है। यहीं पर हमें अनुभूतियों के प्रथम दर्शन होते हैं। सबसे पहले इन अनुभूतियों में विकार व विषाद के स्रोत के रूप में हमारी दमित वासनाएँ, भावनाएँ व मनोग्रन्थियाँ तरह-तरह के रूप धारणकर प्रकट होती हैं। ध्यान के साधक को न इसमें आकर्षित होना चाहिए और न इससे परेशान होना चाहिए। बस तटस्थ होकर निहारते रहना चाहिए। व्यक्तित्व की आन्तरिक सफाई का यह दौर सालों-साल चलता रहता है। इसके साथ ही रोग-शोक के कारणों से छुटकारा मिल जाता है।

इस परिष्कार के बाद क्रम आता है ब्राह्मी चेतना से लय स्थापित होने

का। ज्यों–ज्यों अन्तर्चेतना परिष्कृत होती जाती है, अपने आप ही यह सामञ्जस्य स्थापित होने लगता है। दिव्य अनुभवों के द्वार खुलने लगते हैं। ब्राह्मी चेतना का प्रभाव अन्तर्चेना में घुलने से सभी कुछ दिव्यता में रूपान्तरित हो जाता है। इस स्थिति में जो कुछ अनुभव होता है उसे कहकर अथवा लिखकर नहीं बताया जा सकता। यहाँ तो जो पहुँच सकेंगे वे स्वयं इसके भेद को जान सकेंगे। इसके बारे में बस इतना कहना ही पर्याप्त है कि ध्यान के प्रभाव से साधक में सकारात्मक विचारों व भावों का चुम्बकत्व सघन होने से समूचा व्यक्तित्व स्वयं ही सद्गुणों का स्रोत हो जाता है। युगऋषि गुरुदेव का इस बारे में कहना था कि ध्यान से प्रेम प्रकट होता है। और प्रेम सच्चा हो तो अपने आप ही ध्यान होने लगता है। हालांकि ये रहस्य इतने गहरे हैं कि इन्हें समझने के लिए पहले व्यक्तित्व को स्वाध्याय चिकित्सा से गुजरना आवश्यक है।



अति विलक्षण स्वाध्याय चिकित्सा

स्वाध्याय चिकित्सा की उपयोगिता असाधारण है। इसके द्वारा पहले मन स्वस्थ होता है, फिर जीवन। चिकित्सा के सिद्धान्त एवं प्रयोगों के जो विशेषज्ञ हैं, उन सबका यही कहना है कि रोगी मन ही जीवन को रोगी बनाता है। यदि किसी तरह से मन को निरोग कर लिया जाय तो जीवन निरोग हो सकता है। बात सही भी है यदि हमारे सोच-विचार का तंत्र ही दूषित है तो उसके प्रभाव शारीरिक रोगों एवं व्यावहारिक गड़बड़ियों के रूप में क्यों न उभरेंगे। मानसिक आरोग्य की ओर ध्यान दिए बगैर शरीर को स्वस्थ करने की सोचना, या व्यावहारिक दोषों को ठीक करना, कुछ वैसा ही है, जैसे पत्तों को काटकर पेड़ की जड़ों को सींचते रहना। जब तक पेड़ की जड़ों को खाद-पानी मिलता रहेगा, पत्ते अपने आप ही हरे होते रहेंगे। इसी तरह से जब तक सोच-विचार के तंत्र में विकृति बनी रहेगी, शारीरिक व व्यावहारिक परेशानियाँ बनी रहेंगी।

सोच-विचार या बोध के तंत्र को निरोग करने की सार्थक प्रक्रिया स्वाध्याय से बढ़कर और कुछ नहीं है। लेकिन स्वाध्याय के इस गहरे अर्थ व प्रभाव से ज्यादातर लोग अपरिचित हैं। कुछ लोग तो स्वाध्याय को अध्ययन का पर्याय मान बैठते हैं। वे चाहे कुछ भी क्यों न पढ़ें उसे स्वाध्याय की संज्ञा देते हैं। जबकि इस तरह की पढ़ाई को मात्र अध्ययन कहा जा सकता है स्वाध्याय नहीं। अध्ययन केवल बौद्धिक विकास तक सीमित है, जबकि स्वाध्याय अपने बोध को संवारने की प्रक्रिया है। विशेषज्ञ हमारे बोध के दो आयाम बताते हैं। इनमें से पहला है बाह्य बोध या इन्द्रियों की सहायता से होने वाला बोध। दूसरा है आन्तरिक बोध यानि बौद्धिक विवेचन, विश्लेषण एवं आन्तरिक अनुभूतियों से होने वाला ज्ञान।

बोध के ये दोनों आयाम परस्पर गहरे में गुंथे हैं। जो इन्द्रियाँ अनुभव करती हैं, बुद्धि उस पर विचार किए बिना नहीं रहती। इसी तरह से हमारी आन्तरिक सोच में जो विचार, भावनाएँ, विश्वास, आस्थाएँ, अपेक्षाएँ व आग्रह

समाए रहते हैं, वे इन्द्रिय अनुभूतियों को अपने रंग में रंगे बिना नहीं रहते। कहावत भी है जैसी दृष्टि-वैसी सृष्टि। यदि दृष्टिकोण को स्वस्थ बना लिया जाय तो जीवन के सभी आयाम अपने आप ही स्वस्थ हो जाते हैं। और स्वाध्याय इसी दृष्टिकोण की चिकित्सा करता है। स्वाध्याय को यदि अंग्रेजी भाषा में कहें तो 'सेल्फ स्टडी' न होकर 'स्टडी ऑफ सेल्फ' होगा। दरअसल यह स्वयं के सूक्ष्म अध्ययन की विधि है।

इस विधि के चार मुख्य बिन्दु है। इसके पहले क्रम में हम उन ग्रन्थों-विचारों का चयन करते हैं, जिन्हें स्व की अनुभूति से सम्पन्न महामानवों ने सृजित किया है। ध्यान रखें कोई भी पुस्तक या विचार स्वाध्याय की सामग्री नहीं बन सकता। इसके लिए जरूरी है कि यह पुस्तक या विचार किसी महान् तपस्वी अध्यात्मवेत्ता के द्वारा सृजित हो। इसके लिए श्रीमद्भगवद्गीता, उपनिषद् अथवा परम पूज्य गुरुदेव के द्वारा लिखित ग्रन्थों का चयन किया जा सकता है। इस चयन के बाद दूसरा चरण प्रारम्भ होता है। इस क्रम में हम इन महान् विचारों के परिप्रेक्ष्य में स्वयं को देखते हैं, ऑकलन करते हैं। इस सत्य पर विचार करते हैं कि हमें क्या करना चाहिए और क्या कर रहे हैं ? क्या सोचना चाहिए और क्या सोच रहे हैं ?

यह बड़ा ही महत्त्वपूर्ण क्रम है। इसी स्तर पर हम अपने स्वयं के चिन्तन तंत्र की विकृतियों व विकारों को पहचानते हैं। उनका भली प्रकार निदान करते हैं। गड़बड़ियाँ कहाँ है- और उनके प्रभाव कहाँ पड़ रहे हैं, आगे कहाँ पड़ने की उम्मीद है। इन सभी बातों पर विचार करते हैं। यह सच है कि निदान सही हो सका तो समाधान की नीति भी सही तय होती है। स्वाध्याय चिकित्सा का तीसरा मुख्य बिन्दु यही है। विचार, भावनाओं, विश्वास, आस्थाओं, मान्यताओं, आग्रहों से समन्वित अपने दृष्टिकोण को ठीक करने की नीति तय करना। इसकी पूरी प्रकिया को सुनिश्चित करना। हम कहाँ से प्रारम्भ करें और किस रीति से आगे बढ़ें। इसकी पूरी विधि-विज्ञान को इस क्रम में बनाना और तैयार करना पड़ता है।

इसके बाद चौथा बिन्दु है, इस विधि-विज्ञान के अनुसार व्यवहार। यानि

कि स्वाध्याय को औषधि के रूप में ग्रहण करके स्वयं के परिष्कार का साहसिक कार्य। यह काम ऐसा है, जिसे जुझारू एवं संघर्षशील लोग ही कर पाते हैं। क्योंकि किसी सत्य की वैचारिक स्वीकारोक्ति कर लेना आसान है, पर उसके अनुसार जीवन जीने लगना कठिन है। इसमें आदतों एवं संस्कारों की अनेक बाधाएँ आती हैं। अहंकार अनगिन अवरोध खड़ा करता है। इन्हें दूर करने का एक ही उपाय है हमारी जुझारू एवं साहसिक वृत्ति। जो अपने अहंकार को अपने ही पाँवों के नीचे रौंदने का साहस करते हैं, उनसे बड़ा साहसी इस सृष्टि में और कोई नहीं। सचमुच ही जो अपने को जीतता है, वह महावीर होता है। स्वाध्याय की औषधि का सेवन करने वाले को ऐसा ही साहसी होना पड़ता है।

पाण्डिचेरी आश्रम महर्षि श्री अरविन्द के शिष्य नलिनीकान्त गुप्त ने स्वाध्याय के बारे में अपना उदाहरण प्रस्तुत करते हुए कई मार्मिक बातें कही हैं। यहाँ ध्यान दिलाना आवश्यक है कि नलिनीकान्त अपनी सोलह वर्ष की आयु से लगातार श्री अरविन्द के पास रहे। श्री अरविन्द उन्हें अपनी अन्तरात्मा का साथी-सहचर बताते थे। वह लिखते हैं कि आश्रम में आने पर अन्यों की तरह मैं भी बहुत पढ़ा करता है। अनेक तरह के शास्त्र एवं अनेक तरह की पुस्तकें पढ़ना स्वभाव बन गया था। एक दिन श्री अरविन्द ने बुलाकर उनसे पूछा- इतना सब किसलिए पढ़ता था। उनके इस प्रश्न का सहसा कोई जवाब नलिनीकान्त को न सूझा। वह बस मौन रहे।

वातावरण की इस चुप्पी को तोड़ते हुए श्री अरविन्द बोले- देख पढ़ना बुरा नहीं है। पर यह पढ़ना दो तरह का होता है- एक बौद्धिक विकास के लिए, दूसरा मन-प्राण-अन्तर्चेतना को स्वस्थ करने के लिए। इस दूसरे को स्वाध्याय कहते हैं और पहले को अध्ययन। तुम इतना अध्ययन करते हो सो ठीक है, पर स्वाध्याय भी किया करो। इसके लिए अपनी आन्तरिक स्थिति के अनुरूप किसी मन्त्र या विचार का चयन करो। और फिर उसके अनुरूप स्वयं को ढालने की साधना करो। नलिनीकान्त लिखते हैं, यह बात उस समय की है, जब श्री अरविन्द सावित्री पूरा कर रहे थे। मैंने इसी को अपने स्वाध्याय की

चिकित्सा की औषधि बना लिया।

फिर मेरा नित्य का क्रम बन गया। सावित्री के एक पद को नींद से जगते ही प्रात:काल पढ़ना और सोते समय तक प्रतिपल-प्रतिक्षण उस पर मनन करना। उसी के अनुसार साधना की दिशा-धारा तय करना। इसके बाद इस तय क्रम के अनुसार जीवन शैली-साधना शैली विकसित कर लेना। उनका यह स्वाध्याय क्रम इतना प्रगाढ़ हुआ कि बाद के दिनों में जब श्री अरविन्द से किसी ने पूछा- कि आपके और माताजी के बाद यहाँ साधना की दृष्टि से कौन है? तो उन्होंने मुस्कराते हुए कहा- नलिनी। इतना कहकर थोड़ी देर चुप रहने के बाद बोले, 'नलिनी इज़ इम्बॉडीमेण्ट ऑफ प्यूरिटी' यानि कि नलिनी पवित्रता की मूर्ति है। नलिनी ने वह सब कुछ पा लिया है जो मैंने या माता जी ने पाया है। ऐसी उपलब्धियाँ हुई थीं स्वाध्याय चिकित्सा से नलिनीकान्त को। हालांकि वह कहा करते थे कि स्वस्थ जीवन के लिए शुरूआत अपनी स्थिति के अनुसार मन के स्थान पर तन से भी की जा सकती है। इसके लिए हठयोग की विधियाँ श्रेष्ठ हैं।



आसन, प्राणायाम, बंध एवं मुद्राओं से उपचार

हठयोग की विधियाँ जीवन के प्राण प्रवाह को सम्वर्धित, नियंत्रित व नियोजित करती हैं। अध्यात्म चिकित्सा के सभी विशेषज्ञ इस बारे में एक मत हैं कि प्राण प्रवाह में व्यतिक्रम या व्यतिरेक आने से देह रोगी होती है और मन अशान्त। इस असन्तुलन के कारण शारीरिक हो सकते हैं और मानसिक भी, पर परिणाम एक ही होता है कि हमारा विश्व व्यापी प्राणऊर्जा से सम्बन्ध दुर्बल या विच्छिन्न हो जाता है। यदि यह सम्बन्ध पुनः संवर सके और देह में प्राण फिर से सुचारू रूप से संचालित हो सके तो सभी रोगों को भगाकर स्वास्थ्य लाभ किया जा सकता है। इतना ही नहीं प्राण प्रवाह के सम्वर्धन से देह को दीर्घजीवी व वज्रवत बनाया जा सकता है। नाड़ियाँ व स्नायु संस्थान के विद्युतीय प्रवाह अधिक प्रबल किए जा सकते हैं।

हठयोग की प्रक्रियाएँ आरोग्य व प्राण बल के सम्वर्धन की सुनिश्चित गारंटी देती है। क्योंकि इस विद्या के जानकारों को यह ज्ञान है कि यदि जीवन में प्राणों की दीवार अभेद्य है तो कोई भी रोग प्रवेश नहीं कर सकता। इसलिए इन प्रक्रियाओं का सारा जोर प्राणों के सम्वर्धन, परिशोधन व विकास पर है। हमारे जीवन में प्राण प्रवाह का स्थूल रूप श्वास है श्वास के आवागमन से देह में प्राण प्रवेश करते हैं और अंग-प्रत्यंग में विचरण करते हैं। आसन, प्राणायाम, बंध एवं मुद्रा आदि प्रक्रियाओं के द्वारा इन पर नियंत्रण स्थापित करके इनके प्रवाह को अपनी इच्छित दिशा में मोड़ा जा सकता है। यही वजह है कि हठयोगी अपने स्वास्थ्य का स्वामी है। रोग उसके पास फटकते भी नहीं। किसी तरह की बीमारियाँ उसे प्रभावित नहीं कर पाती।

ये प्रभाव हठयोग की विधियों के हैं, जिनमें सबसे प्रारम्भिक विधि आसन है। शरीर के विभिन्न अंगों को मोड़-मरोड़ कर किए जाने वाले ये आसन अनेक हैं। और प्रत्यक्ष में ये किसी व्यायाम जैसे लगते हैं, किन्तु यथार्थता इससे भिन्न है। व्यायाम की प्रक्रियाएँ कोई भी हो, कैसी भी हो इनका

प्रभाव केवल शरीर के प्रत्येक अवयव में प्राण को क्रियाशील करके उसे सम्पूर्ण स्वास्थ्य प्रदान करता है। प्रभाव की दृष्टि से सोचें तो इनके प्रभाव शारीरिक होने के साथ मानसिक व आध्यात्मिक भी हैं।

शारीरिक दृष्टि से देखें तो आसनों से शरीर की सबसे महत्त्वपूर्ण अन्तःस्रावी ग्रन्थि प्रणाली नियंत्रित एवं सुव्यवस्थित होती है। परिणामतः सभी ग्रन्थियों से उचित मात्रा में रस का स्राव होने लगता है। ध्यान देने की बात यह भी हे कि मांसपेशियां, हड्डियाँ, स्नायु मण्डल, ग्रन्थिप्रणाली, श्वसन प्रणाली, उत्सर्जन प्रणाली, रक्त संचरण प्रणाली सभी एक दूसरे से सम्बन्धित हैं। वे एक दूसरे के सहयोगी हैं। आसन के अनेक प्रकार शरीर को लचीला तथा परिवर्तित वातावरण के अनुकूल बनाने के योग्य बनाते हैं। इनके प्रभाव से पाचन क्रिया तीव्र हो जाती है। उचित मात्रा में पाचक रस तैयार होता है। अनुकम्पी एवं परानुकम्पी तंत्रिका प्रणाली में सन्तुलन आ जाता है। फलस्वरूप इनके द्वारा बाहरी और आन्तरिक अंगों के कार्य ठीक ढंग से होने लगते हैं।

शरीर के साथ आसनों की क्रियाएँ मन को भी समर्थ व शक्तिशाली बनाती हैं। इनके प्रभाव से दृढ़ता व एकाग्रता की शक्ति विकसित होती है। यहां तक कि कठिनाइयाँ मानसिक शक्तियों के विकास का माध्यम बन जाती हैं। व्यक्ति में आत्मविश्वास आता है और वह औरों के लिए प्रेरणादायक बन जाता है। आध्यात्मिक दृष्टि से देखें तो आसनों के प्रभाव से शरीर शुद्ध होकर उच्चस्तरीय आध्यात्मिक साधनाओं के लिए तैयार हो जाता है। यहाँ इस सच्चाई को स्वीकारने में थोड़ा सा भी संकोच नहीं कि आसनों से कोई आध्यात्मिक अनुभव तो नहीं होते पर ये आध्यात्मिक अनुभवों को पाने में सहायक जरूर हैं।

प्राणायाम आसनों की अपेक्षा अधिक सूक्ष्म विधि है। यूं तो इसकी सारी प्रक्रियाएँ श्वसन के आरोह–अवरोह एवं इसके स्वैच्छिक नियंत्रण पर टिकी हैं। पर यथार्थ में यह विश्व व्यापी प्राण ऊर्जा से अपना सामञ्जस्य स्थापित करने की विधि है। आमतौर पर लोग इसे केवल अधिक आक्सीजन प्राप्त करने की प्रणाली के रूप में जानते हैं। किन्तु सत्य इससे भिन्न है। श्वसन के माध्यम से इसके द्वारा नाड़ियों, प्राण नलिकाओं एवं प्राण के प्रवाह पर व्यापक असर होता

है। परिणामतः नाड़ियों का शुद्धिकरण होता है तथा मौलिक और मानसिक स्थिरता प्राप्ति होती है। इसमें की जाने वाली कुम्भक प्रक्रिया द्वारा न केवल प्राण का नियंत्रण होता है, बल्कि मानसिक शक्तियों का भी विकास होता है।

प्राणायाम के अलावा बन्ध हठयोग की अन्य महत्त्वपूर्ण विधि है। इसे अन्तः शारीरिक प्रक्रिया कहा गया है। इनके अभ्यास से व्यक्ति शरीर के विभिन्न अंगों तथा नाड़ियों को नियंत्रित करने में समर्थ होता है। इनके द्वारा शरीर के आन्तरिक अंगों की मालिश होती है। रक्त का जमाव दूर होता है। इन शारीरिक प्रभावों के साथ बन्ध सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त विचारों एवं आत्मिक तरंगों को प्रभावित कर चक्रों पर सूक्ष्म प्रभाव डालते हैं। यहाँ तक कि यदि इन का अभ्यास विधिपूर्वक जारी रखा जाय तो सुषुम्ना नाड़ी में प्राण के स्वतन्त्र प्रवाह में अवरोध उत्पन्न करने वाली ब्रह्मग्रन्थि, विष्णुग्रन्थि व रुद्रग्रन्थि खुल जाती है और आध्यात्मिक विकास का पथ प्रशस्त होता है।

हठयोग की एक अन्य विधि के रूप में मुद्राएँ सूक्ष्म प्राण को प्रेरित, प्रभावित व नियंत्रित करने वाली प्रक्रियाएँ हैं। इनमें से कई मुद्राएँ तो ऐसी हैं जिनके द्वारा अनैच्छिक शरीरगत प्रक्रियाओं पर नियंत्रण प्राप्त किया जा सकता है। मुद्राओं का अभ्यास साधक को सूक्ष्म शरीर स्थित प्राण-शक्ति की तरंगों के प्रति जागरूक बनाता है। अभ्यास करने वाला इन शक्तियों पर चेतन रूप से नियंत्रण प्राप्त करता है। फलतः व्यक्ति अपने शरीर के किसी अंग में उसका प्रवाह ले जाने या अन्य व्यक्ति के शरीर में उसे पहुँचाने की क्षमता प्राप्त करता है।

हठयोग की ये सभी विधियाँ जीवन व्यापी प्राण के स्थूल व सूक्ष्म रूप को प्रेरित, प्रभावित, परिशोधित व नियंत्रित करती हैं। इनके प्रभाव से प्राण प्रवाह में आने वाले व्यतिक्रम या व्याघात को समाप्त किया जा सकता है। इसके लाभ अनगिनत है। ऐसे ही एक लाभ का उदाहरण हम यहाँ पर दे रहे हैं। जिनसे इन पंक्तियों के पाठक इन विधियों के महत्त्व को जान सकेंगे। उन दिनों यहाँ से एक योग विशेषज्ञ अमेरिका के एक विश्वविद्यालय में गए थे। वहाँ उनका एक योग विषय पर व्याख्यान था। जिस विश्वविद्यालय में उन्हें व्याख्यान

देना था, वहाँ उन दिनों विद्यार्थियों को द्रुत शिक्षण व प्रशिक्षण पर कुछ प्रयोग सम्पन्न किए जा रहे थे। इसे उन लोगों ने साल्ट नाम दिया था। साल्ट यानि कि सिस्टम ऑफ एक्सीलरेटेड लर्निंग एण्ड ट्रेनिंग।

उस प्रयोग के दौरान जब बात होने लगी तो यहाँ पहुँचे योग विशेषज्ञ ने अपनी चर्चा में कहा, मस्तिष्क एवं मन की ग्रहणशीलता का सम्बन्ध श्वास से होता है। योग इस बात को स्वीकार करता है। इस बात को सुनते ही प्रयोगकर्त्ता वैज्ञानिक प्रसन्न हो गए और उन्होंने कहा, आप तो भारत से आए हैं क्यों नहीं हमारे विद्यार्थियों पर प्रयोग करते। इस बात ने एक लघुप्रयोग का सिलसिला जुटाया। आचार्य श्री द्वारा बताए गए प्राणायाम की सरलतम विधि प्राणाकर्षण प्राणायाम को विद्यार्थियों को सिखाया गया। और प्रयोग प्रारम्भ हो गया। एक महीने तक यह सिलसिला चलता रहा। एक महीने के बाद पाया गया कि विद्यार्थियों की ग्रहणशीलता तीस से चालीस प्रतिशत तक बढ़ गयी। उनके तनाव, दुश्चिन्ता आदि भी समाप्त हुए। इस प्रयोग से वहाँ के वैज्ञानिक समुदाय को हठयोग की विधियों के महत्त्व का भान हुआ। उन्होंने अनुभव किया कि इन विधियों का केन्द्रीभूत तत्त्व प्राण चिकित्सा है।



आध्यात्मिक चिकित्सा की प्रथम कक्षा- रेकी

प्राण चिकित्सा ऋषि भूमि भारत की प्राचीन परम्परा है। वेदों, उपनिषदों एवं पुराण कथाओं में इससे सम्बन्धित कई कथानक पढ़ने को मिलते हैं। तप व योग की अनेकों ऐसी रहस्यमय प्रक्रियाएँ हैं, जिनके द्वारा विश्वव्यापी प्राण ऊर्जा से अपना सम्पर्क बनाया जा सकता है। इन प्रक्रियाओं द्वारा इस प्राण ऊर्जा को पहले स्वयं ग्रहण करके फिर इच्छित व्यक्ति में इसे सम्प्रेषित किया जाता है। फिर यह व्यक्ति दूर हो अथवा पास इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। प्राण विद्या का यही रूप इन दिनों 'रेकी' नाम से प्रचलन में है। रेकी जापानी भाषा का शब्द है। इसका मतलब है-विश्वव्यापी जीवनीशक्ति। रेकी शब्द में 'रे' अक्षर का अर्थ है विश्वव्यापी तथा 'की' का मतलब है जीवनीशक्ति। यह विश्वव्यापी जीवनीशक्ति समस्त सृष्टि में समायी है। सही रीति से इसके नियोजन एवं सम्प्रेषण के द्वारा विभिन्न रोगों का उपचार किया जा सकता है।

प्राण चिकित्सा की प्राचीन विधि को नवजीवित करने का श्रेय जापान के डॉ. मेकाओ उशी को है। डॉ. मेकाओ उशी जापान के क्योटो शहर में ईसाई विद्यालय के प्रधान थे। एक बार उनके एक विद्यार्थी ने उनसे सवाल किया कि ईसामसीह जिस प्रकार किसी को छूकर किसी रोगी को रोगमुक्त कर देते थे वैसा आजकल क्यों नहीं होता है? क्या आप वैसा कर सकते हैं? डॉ. उशी इस सवाल का उस समय कोई जवाब नहीं दे सके, लेकिन उन्हें यह बात लग गई। वे इस विधि की खोज में अमेरिका के शहर शिकागो पहुँचे, वहाँ उन्होंने अध्यात्म विद्या में डॉक्ट्रेट की उपाधि प्राप्त की। किन्तु अनेकों ईसाई एवं चीनी ग्रंथों के पन्ने पलटने के बावजूद उन्हें इस सवाल का कोई जवाब नहीं मिला। इसके बाद वे उत्तर भारत आये, यहाँ उन्हें कतिपय संस्कृत ग्रंथों में कुछ संकेत मिले।

इन सूत्रों व संकेतों के आधार पर साधना करने के लिए डॉ. उशी अपने शहर से १६ मील दूर स्थित कुरीयामा नाम की एक पहाड़ी पर गये। यहाँ

इन्होंने अपनी आध्यात्मिक साधना की। इस एकान्त स्थान पर २१ दिन का उपवास रखकर ये तप साधना में लग गये। साथ ही उन संस्कृत मंत्रों का जप भी करते रहे। बीस दिनों तक इनको कोई खास अनुभूति नहीं हुई। लेकिन इक्कीसवाँ दिन इन्हें एक तेज प्रकाश पुञ्ज तीव्र गति से उनकी ओर बढ़ता हुआ दिखाई दिया। यह प्रकाश पुञ्ज ज्यों-ज्यों उनकी ओर बढ़ता था, त्यों-त्यों बड़ा होता जाता था। अन्त में वह उनके सिर के मध्य में टकराया। इन्होंने सोचा कि अब तो मरना निश्चित है। फिर अचानक उन्हें विस्फोट के साथ आकाश में कई रंगों वाले लाखों चमकीले सितारे दिखाई दिये। तथा एक श्वेत प्रकाश में उन्हें वे संस्कृत के श्लोक दिखाई दिये, जिनका वे जप करते थे। यहीं से उन्हें विश्वव्यापी प्राण ऊर्जा के उपयोग की विधि प्राप्त हुई, जिसे उन्होंने रेकी का नाम दिया।

रेकी शक्ति को पाने के बाद उन्होंने सबसे पहले अपने पाँव के अगूँठे की चोट को ठीक किया। यह इनकी पहली उपचार प्रक्रिया थी। इसके बाद ये जब पर्वत से उतरकर एक सराय में रुके तो उस समय सराय मालिक के पौत्री के दाँतों में कई दिनों से सूजन थी, दर्द भी काफी ज्यादा था। डॉ. उशी ने इसे छुआ और उसी समय उसका दर्द व सूजन जाता रहा। इसके बाद तो डॉ. उशी ने रेकी के सिद्धान्तों एवं प्रयोगों का विधिवत् विकास किया। और अपने शिष्यों को इसमें प्रशिक्षित किया। डॉ. चिजिरोहयाशी हवायो तफाता एवं फिलिप ली फूरो मोती आदि लोगों ने उनके बाद इस रेकी विद्या को विश्वव्यापी बनाया।

डॉ. मेकाओ उशी ने रेकी चिकित्सक के लिए पाँच सिद्धान्त निश्चित किये थे। १. क्रोध न करना, २. चिंता से मुक्त होना, ३. कर्त्तव्य के प्रति ईमानदार होना, ४. जीवमात्र के प्रति प्रेम व आदर का भाव रखना एवं ५. ईश्वरीय कृपा के प्रति आभार मानना। इन पाँचों नियमों का सार यह है कि व्यक्ति अपनी नकारात्मक सोच व क्षुद्र भावनाओं से दूर रहे, क्योंकि ये नकारात्मक सोच व क्षुद्र भावनाएँ ही हैं, जिनसे न केवल देह में स्थित प्राण ऊर्जा का क्षरण होता है, बल्कि विश्वव्यापी प्राण ऊर्जा के जीवन में आने के मार्ग अवरुद्ध होते हैं। ये सभी नियम रेकी साधक को विधेयात्मक बनाते हैं, जिनकी वजह से प्राण प्रवाह नियमित रहता है।

प्राण चिकित्सा की इस रेकी प्रक्रिया में अन्तरिक्ष में संव्याप्त प्राणशक्ति का उपयोग किया जाता है। यह सच तो हम जानते हैं कि प्राण ऊर्जा अन्तरिक्ष में व्याप्त है। पृथ्वी के लिए इसका मुख्य स्रोत सूर्य है। सूर्य से अलग-अलग तरह की तापीय एवं विद्युत चुम्बकीय तरंगे निकलकर धरती पर अलग असर डालती हैं। ठीक इसी तरह प्राण शक्ति भी एक जैव वैद्युतीय तरंग है। जो धरती में सभी जड़ चेतन एवं प्राणी-वनस्पतियों में प्रवाहित होती है। इसी की उपस्थिति के कारण सभी क्रियाशील व गतिशील होते हैं। इसी वजह से धरती में उर्वरता आती है और वनस्पतियाँ तथा जीव-जगत् स्वस्थ व समृद्ध बने रहते हैं। यह सभी कुछ प्राण शक्ति का चमत्कार है। मनुष्य भी अपनी आवश्यकतानुसार इसी प्राण शक्ति को ग्रहण करता है। इसमें अवरोध व रुकावट से ही बीमारियाँ पनपती हैं। रेकी चिकित्सा के द्वारा इस रुकावट को दूर करने के साथ व्यक्ति के अतिरिक्त प्राण शक्ति दी जाती है। इस प्राण शक्ति को ग्रहण कर वह व्यक्ति फिर से अपना खोया हुआ स्वास्थ्य पा सकता है।

प्राण चिकित्सा की इस विधि से न केवल मनुष्य, बल्कि पशुओं का भी उपचार किया जा सकता है। वनस्पतियों की भी प्राण ऊर्जा बढ़ायी जा सकती है। भारतवर्ष में इन दिनों रेकी विधि का प्रचलन बढ़ चुका है। प्रत्येक शहर में कहीं न कहीं रेकी मास्टर मिल जाते हैं। इनसे मिलने वालों के अपने-अपने अलग-अलग अनुभव हैं। इनमें से कई अपने परिजन भी हैं। इनकी अनुभूतियाँ बताती हैं कि गायत्री साधना करने वाला अधिक समर्थ रेकी चिकित्सक हो सकता है। इसका कारण यह है कि रेकी में ली जाने वाली प्राण ऊर्जा का स्रोत सूर्य है। वही यहाँ गायत्री मंत्र का आराध्य देवता है। गायत्री साधना में साधक की भावनाएँ स्वतः ही सूर्य पर एकाग्र हो जाती हैं और उसे अपने आप ही प्राण ऊर्जा के अनुदान मिलने लगते हैं।

गायत्री साधना के साथ रेकी को जोड़ने पर एक अन्य लाभ भी देखने को मिला है। और वह यह है कि गायत्री साधक के सभी चक्र या शक्तिकेन्द्र स्व गतिशील हो जाते हैं। उसे किसी अतिरिक्त विधि की आवश्यकता नहीं पड़ती। चक्रों के सम्बन्ध में यहाँ एक बात जान लेना चाहिए, क्योंकि अधिकाँश

रेकी देने वाले इस बारे में भ्रमित देखे जाते हैं। रेकी विधि में चक्रों को केवल क्रियाशील बनाने की बात है, न कि इनके सम्पूर्ण रूप से जागरण का। क्रियाशील होने का मतलब है कि हमें आवश्यक प्राण ऊर्जा ब्रह्माण्ड से मिलती रहे। इस प्रक्रिया में जो अवरोध आ रहे हैं वे दूर हो जायें। जबकि योग विधि जागरण होने पर योग साधक का सम्बन्ध चक्रों से सम्बन्धित चेतना के अन्य आयामों से हो जाता है और उसमें अनेकों रहस्यमयी शक्तियाँ प्रवाहित होने लगती हैं। प्राण चिकित्सा के रूप में रेकी आध्यात्मिक चिकित्सा की प्राथमिक कला है। इसमें गायत्री साधना के योग से इसकी उच्चस्तरीय कक्षाओं में स्वत: प्रवेश हो जाता है। इस सम्बन्ध में विशिष्ट शक्ति व सामर्थ्य अर्जित करने के लिए आध्यात्मिक वातावरण का सुयोग उपयुक्त माना गया है।



वातावरण की दिव्य आध्यात्मिक प्रेरणाएँ

आध्यात्मिक वातावरण में रहने से व्यक्ति के तन, मन व जीवन की आध्यात्मिक चिकित्सा स्वत: होती रहती है। बस यहाँ रहने वाले व्यक्ति ग्रहणशील भर हों। अन्यथा उनकी स्थिति गंगा जल में रहने वाले मछली, कछुओं जैसी बनी रहती है। वे गंगाजल का भौतिक लाभ तो उठाते हैं, पर उनकी चेतना इसके आध्यात्मिक संवेदनों से संवेदित नहीं होती। इसके विपरीत गंगा किनारे रहने वाले, गंगा-जल से पूजा अर्चना करने वाले तपस्वी, योगी पल-पल शरीर के साथ अपने अन्तर्मन को भी इससे धुलते रहते हैं। उनमें आध्यात्मिक जीवन की ज्योति निखरती रहती है। श्रद्धा और संस्कार हों, विचार व भावनाएँ संवेदनशील हों तो आध्यात्मिक वातावरण का सान्निध्य जीवन में चमत्कार पैदा किए बिना नहीं रहता।

बरसात हो तो मैदान हरियाली से भर जाते हैं। हवा का रूख सही हो तो नाविक की यात्रा सुगम हो जाती है। यही स्थिति वातावरण की वैचारिक एवं भावनात्मक ऊर्जा के बारे में है। यदि यह ऊर्जा प्रेरक व सकारात्मक है तो वहाँ रहने वालों के मन स्वयं ही खुशियों से भरे रहते हैं। अन्तर्मन में नयी-नयी प्रेरणाओं का प्रवाह उमगता रहता है। जीवन सही दिशा में गतिशील रहता है और उसकी दशा संवरती-निखरती रहती है। इसके विपरीत स्थिति होने पर मन में विषाद व अवसाद के चक्रव्यूह पनपते हैं। प्राणशक्ति स्वयं ही क्षीण होती रहती है। जीवन को अनेकों आधियाँ-व्याधियाँ घेरे रहती हैं। इस सत्य को वे सभी अनुभव करते हैं, जिन्हें वातावरण की सूक्ष्मता का ज्ञान है।

प्रत्येक स्थान स्थूल, सूक्ष्म व कारण तत्त्वों के क्रमिक आवरण से घिरा होता है। इनमें स्थूल तत्त्व जो सभी को खुली आँखों से दिखाई देते हैं, परिवेश की सृष्टि करते हैं। आस-पास की स्थिति, बिल्डिंग-इमारतें, स्कूल-संस्थाएँ, वहाँ रहने वाले लोग इसी से परिवेश का परिचय मिलता है। इस स्थूल आवरण के अलावा प्रत्येक स्थान में पर्यावरण का सूक्ष्म आवरण भी होता है। यह

स्थिति पंचमहाभूतों- पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु व आकाश के समन्वय व सन्तुलन पर निर्भर करती है। इस समन्वय व सन्तुलन की स्थिति कितनी संवरी या बिगड़ी है। इसी के सत्प्रभाव या दुष्प्रभाव उस स्थान पर दिखाई देते हैं। पर्यावरण यदि असन्तुलित है, तो वहाँ अनायास ही शारीरिक बीमारियाँ, मनोरोग पनपते रहते हैं। सभी जानते हैं कि इन दिनों विशिष्टों, वरिष्ठों व विशेषज्ञों के साथ सामान्य जनों की पर्यावरण के प्रति जागरूकता बढ़ी है और वे इसके प्रभावों को अनुभव करने लगे हैं।

इन स्थूल एवं सूक्ष्म आवरणों के अतिरिक्त प्रत्येक स्थान में एक कारण आवरण की परत चढ़ी रहती है। यह परत वहाँ के वातास् यानि कि हवाओं में व्याप्त विचारों, भावनाओं व प्राण प्रवाह की होती है। इसी से व्यक्ति की सोच प्रेरित व प्रभावित होती है। इस सार के अनुरूप ही व्यक्तित्व विनिर्मित होते हैं। सामान्य क्रम में यह स्तर सकारात्मक व नकारात्मक विचारों, अच्छी व बुरी भावनाओं एवं प्रायः प्रदूषित प्राण प्रवाह का मिला-जुला मिश्रण होता है। इन दिनों इसकी स्थिति और भी बुरी हो गयी है। यही वजह है कि जन सामान्य प्रदूषित प्रेरणाओं से ग्रसित है। वह भ्रमित व भटका हुआ है। उसका तन-मन व जीवन बुरी तरह से बीमारियों की लपेट व चपेट में है।

परिवेश के परिदृश्य की चिन्ता सभी करते हैं, पर्यावरण को भी लेकर आन्दोलन खड़े किए जाते हैं, किन्तु प्रेरणाओं के स्रोत वातावरण की ओर किसी का भी ध्यान नहीं है। जबकि प्राचीन भारत इस दृष्टि से पूरी तरह समृद्ध व सम्पन्न था। स्थान-स्थान पर स्थापित तीर्थ, महामानवों की तपस्थली, सिद्धपीठ इस महान् आवश्यकता को पूरा करते थे। यहाँ के आध्यात्मिक वातावरण के सम्पर्क में व्यक्ति अपने जीवन के उच्च स्तरीय प्रेरणाओं से लाभान्वित होता था। आज तो तीर्थ स्थानों को भी हास-विलास व मनोरंजन का केन्द्र बना दिया गया है। भाव भरी प्रेरणाएँ वहाँ से नदारद हैं। यही वजह है कि मानवीय व्यक्तित्व दिन प्रतिदिन रुग्ण होता जा रहा है।

इसकी चिकित्सा के लिए आध्यात्मिक वातावरण का समर्थ सम्बल चाहिए, जैसा कि भारत के स्वाधीनता संघर्ष के दौर में था। इस सम्बन्ध में

योगिवर महर्षि श्री अरविन्द के भ्राता वारीन्द्र ने अपने संस्मरणों को सुन्दर ढंग से संजोया है। उन्होंने लिखा था अपने व्यक्तित्व को उच्चस्तरीय बनाने के लिए हम युवाओं की आध्यात्मिक चिकित्सा भूमि दक्षिणेश्वर थी। इस पवित्र स्थान का स्मरण ही हम सबको नवस्फूर्ति से भर देता था। इसका कारण केवल यही था कि भगवान् श्री रामकृष्ण ने यहाँ पर अद्भुत व अपूर्व तपस्याएँ सम्पन्न की थी। यहाँ की मिट्टी में उनके तप के संस्कार थे। यहाँ की वृक्ष-वनस्पतियों में उच्चस्तरीय जीवन की भावनाएँ समायी थी। यहाँ की हवाओं में हम लोग उन महामानव के महाप्राण की अनुभूति पाते थे।

दक्षिणेश्वर की पावन मिट्टी को अपने माथे पर लगाकर, यहाँ के पेड़ों के नीचे बैठकर हम सभी के मन का अवसाद दूर होता था। वारीन्द्र इस कथा को आगे बढ़ाते हुए कहते हैं कि स्वाधीनता संघर्ष का वह दौर हममें से किसी के लिए आसान नहीं था। विपरीतताएँ-विपन्नताएँ भयावह थी। कदम-कदम पर भारी संकट थे। कब क्या हो जाय कोई ठिकाना नहीं। ऐसे में अच्छा खासा व्यक्ति भी मनोरोगी हो जाए। जीवन शैली ऐसी कि खाना-सोना यहाँ तक कि जीना भी हराम। ऐसे में देह का रोगों से घिर जाना कोई आश्चर्य की बात न थी। पर हम सभी को दक्षिणेश्वर की मिट्टी पर गहरी आस्था थी। इस मिट्टी से तिलक कर हम ऊर्जावान होते थे। यह भूमि हमारी सब प्रकार से चिकित्सा करती थी।

इस आश्चर्यजनक किन्तु सत्य का मर्म आस्थावान समझ सकते हैं। यह अनुभव कर सकते हैं कि वातावरण की आध्यात्मिक प्रेरणाएँ किस तरह से व्यक्तित्व को प्रेरित, प्रभावित व परिवर्तित करती हैं। वारीन्द्र की इस अनुभूति कथा की अगली कड़ी का सच यह है कि महर्षि श्री अरविन्द को जब अंग्रेज पुलिस कप्तान गिरफ्तार करने उनके कमरे में आया तो उसे एक डिबिया मिली। इस डिबिया में दक्षिणेश्वर की मिट्टी थी। साधारण सी मिट्टी इतने जतन से रखी गई थी, अंग्रेज कप्तान को इस पर बिल्कुल भरोसा न हुआ। उसने कई ढंग से पूछ-ताछ की, जाँच-पड़ताल की, पर कोई उसके मन-मुताबिक निष्कर्ष न निकला। क्योंकि उस मिट्टी को वह बम बनाने का रसायन समझ रहा था। उसने उसे प्रयोगशाला में परीक्षण के लिए भेज दिया।

प्रयोगशाला के निष्कर्षों ने भी उसे बेचैन कर दिया। क्योंक ये निष्कर्ष भी उसे मिट्टी बता रहे थे। पर वह मानने के लिए तैयार नहीं था कि यह मिट्टी हो सकती है। सभी क्रान्तिकारियों ने इस पर उसका खूब मजाक बनाया। वारीन्द्र ने इस घटना पर अपनी टिप्पणी करते हुए लिखा था कि वह अंग्रेज कप्तान एक अर्थो में सही था। वह मिट्टी साधारण थी भी नहीं। वह एकदम असाधारण थी, क्योंकि उसमें दक्षिणेश्वर के परमहंस देव की चेतना समायी थी, जो हम सभी के जीवन की औषधि थी। अध्यात्मिक वातावरण के इस सच के दिव्य प्रभाव बहुत सघन है किन्तु इन्हें वही अनुभव कर सकता है, जो संयम व सदाचार के प्रयोगों में संलग्न हो।



संयम है प्राण-ऊर्जा का संरक्षण, सदाचार ऊर्ध्वगमन

संयम-सदाचार के प्रयोग चिकित्सा की आध्यात्मिक प्रक्रिया के आधार हैं। इन्हीं के बलबूते आध्यात्मिक चिकित्सा के संरजाम जुटते और अपना परिणाम प्रस्तुत करते हैं। हालाँकि चिकित्सा की अन्य विधियाँ इन प्रयोगों के बारे में मौन हैं। लेकिन अगर इन्हें ध्यान से परखा जाय तो इनमें भी किसी न किसी स्तर पर यह सच्चाई झलकती है। रोगी का रोग निदान करने के बाद प्राय: सभी चिकित्सक खानपान के तौर-तरीके और जीवनशैली के बारे में निर्देश देते हैं। इन निर्देशों में प्रकारान्तर से संयम-सदाचार ही अन्तर्निहित रहता है। तनिक सोचें तो सही- कौन ऐसा चिकित्सक होगा जो अपने गम्भीर रोगी को तला-भुना खाना, मिर्च-मसालेदार गरिष्ठ चीजों के उपयोग की इजाजत देगा। यही क्यों रोगियों के साथ राग-रंग एवं विलासिता के विषय भोग भी वर्जित कर दिये जाते हैं।

चिकित्सा की कोई भी पद्धति रोगियों के जीवनक्रम का जिस तरह से निर्धारण करती है, प्रकारान्तर से वह उन्हें संयम-सदाचार की सिखावन ही है। इस सिखावन की उपेक्षा करके कोई गम्भीर रोग केवल औषधियों के सहारे ठीक नहीं होता है। इसमें इतना जरूर है कि इन चिकित्सकों एवं रोगियों की यह आस्था रोग निवारण तक ही किसी तरह टिक पाती है। रोग के लक्षण गायब होते ही फिर वे भोग-विलास में संलग्न होकर नये रोगों को आमंत्रित करने में जुट जाते हैं। जबकि आध्यात्मिक चिकित्सा की जीवन दृष्टि एवं जीवनशैली संयम-सदाचार के प्रयोगों पर ही टिकी है। आध्यात्मिक चिकित्सकों ने इन प्रयोगों को बड़ी गहनता से किया है। इसकी विशेषताओं एवं सूक्ष्मताओं को जाना है और इसके निष्कर्ष प्रस्तुत किये हैं।

आध्यात्मिक चिकित्सकों के लिए संयम-सदाचार प्राण ऊर्जा को संरक्षित, संग्रहीत व संवर्द्धित करने की वैज्ञानिक विधियाँ हैं। आमतौर पर संयम और

सदाचार को एक विवशता के रूप में जबरदस्ती थोपे गये जीवन क्रम के रूप में लिया जाता है। कई लोग तो इन्हें प्रवृत्तियों के दमन के रूप में समझते हैं और पूरी तरह से अवैज्ञानिक मानते हैं। आध्यात्मिक चिकित्सकों का कहना है कि ऐसे लोग दोषी नहीं नासमझ हैं। दरअसल इन लोगों को प्राण ऊर्जा के प्रवाह की प्रकृति, उसमें आने वाली विकृति एवं इसके निदान-निवारण की सूक्ष्म समझ नहीं है। ये जो भी कहते हैं अपनी नासमझी की वजह से कहते हैं।

बात समझदारी की हो तो संयम-प्राण ऊर्जा का संरक्षण है और सदाचार उसका उर्ध्वगमन है। ये दोनों ही तत्त्व नैतिक होने की अपेक्षा आध्यात्मिक अधिक है। विशेषज्ञ मानते हैं कि अकेले प्राण ऊर्जा का संरक्षण पर्याप्त नहीं है, इसका ऊर्ध्वगमन भी जरूरी है। हालाँकि अकेले संरक्षण हो तो भी व्यक्ति बीमार नहीं होता, पर यदि बात प्राण शक्ति से मानसिक सामर्थ्य के विकास की हो तो इसका ऊर्ध्वगमन भी होना चाहिए। आयुर्वेद के कतिपय ग्रंथ इस बात की गवाही देते हैं कि जिस भी व्यक्ति में प्राणों का ऊर्ध्वगमन हो रहा है, उसके स्नायु वज्र की भाँति मजबूत हो जाते हैं। उसकी धारणा शक्ति असाधारण होती है। वह मनोबल व साहस का धनी होता है।

इस सच्चाई को और अधिक व्यापक ढंग से जानना चाहे तो संयम का अर्थ है-अपने जीवन की शक्तियों की बर्बादी को रोकना। बूँद-बूँद करके उन्हें बचाना। इस प्रक्रिया में इन्द्रिय संयम, समय संयम, अर्थ संयम व विचार संयम को प्रमुखता दी जाती है। जहाँ तक सदाचार का प्रश्न है तो यह आध्यात्मिक शक्तियों के विकास के लिए किया जाने वाला आचरण है। यह किसी तरह की विवशता नहीं बल्कि जीवन के उच्चस्तरीय प्रयोजनों के प्रति आस्था है। जिनमें यह आस्था होती है वे शुरुआत में भले ही जड़ बुद्धि हों लेकिन बाद में प्रतिभावान् हुए बिना नहीं रहते। उनकी मानसिक सामर्थ्य असाधारण रूप से विकसित होती है।

अभी कुछ दिनों पूर्व साइकोन्यूरो इम्यूनोलॉजी के क्षेत्र में एक प्रयोग किया गया। यह प्रयोग दो विशिष्ट वैज्ञानिकों आर. डेविडसन और पी. एरिकसन ने सम्पन्न किया। इस प्रयोग में उन्होंने चार सौ व्यक्तियों को लिया। इसमें से

२०० व्यक्ति ऐसे थे, जिनकी अध्यात्म के प्रति आस्था थी जो संयमित एवं सदाचार परायण जीवन जीते थे। इसके विपरीत २०० व्यक्ति इनमें इस तरह के थे जिनका विश्वास भोगविलास में था, जो शराबखानों व जुआघरों में अपना समय बिताते थे। जिनकी जीवनशैली अस्त-व्यस्त थी। इन दोनों तरह के व्यक्तियों का उन्होंने लगातार दस वर्षों तक अध्ययन किया।

अध्ययन की इस प्रक्रिया में उन्होंने देखा कि जो व्यक्ति संयम, सदाचार पूर्वक जीते हैं, वे बीमार कम होते हैं। उनमें मानसिक उत्तेजना, उद्वेग एवं आवेग बहुत कम होते हैं। ऐसे व्यक्ति प्रायः तनाव, दुश्चिंता से मुक्त होते हैं। यदि इन्हें कोई बीमारी हुई भी तो ये बहुत जल्दी ठीक हो जाते हैं। चाट लगने पर या ऑपरेशन होने पर उनकी अपेक्षा इनके घाव जल्दी भर जाते हैं। इसके विपरीत असंयमित एवं विलासी मनोभूमि वालों की स्थिति इनसे ठीक उलटा पायी गयी। इनकी जीवनी शक्ति नष्ट होते रहने के कारण इन्हें कोई न कोई छोटी-मोटी बीमारियाँ हमेशा घेरे रहती हैं। छूत की बीमारियों की सम्भावना इनमें हमेशा बनी रहती है। तनाव, दुश्चिंता, उत्तेजना, आवेग तो जैसे इनका स्वभाव ही होता है। कोई बीमारी होने पर अपेक्षाकृत ये जल्दी ठीक नहीं होते। एक ही बीमारी इन्हें बार-बार घेरती रहती है। चोट लगने या ऑपरेशन होने पर इनके घाव भरने में ज्यादा समय लगता है। इस स्थिति को एक दशक तक परखते रहने पर डेविडसन व एरिकसन ने यह निष्कर्ष निकाला कि संयम-सदाचार से व्यक्ति में प्रतिरोधक क्षमता में असाधारण वृद्धि होती है। इसी कारण उनमें शारीरिक व मानसिक रोगों की सम्भावना कम रहती है। यदि किसी तरह से कोई रोग हुआ भी तो इनसे छुटकारा जल्दी मिलता है।

इस क्रम में इस वैज्ञानिक दृष्टि की अपेक्षा आध्यात्मिक दृष्टि कहीं ज्यादा गहरी व सूक्ष्म है। हमने परम पूज्य गुरुदेव के जीवन में इस सत्य की अनुभूति पायी है। अपने जीवन के उत्तरार्द्ध में उन्होंने तो केवल अपने संकल्प से अनगिनत लोगों को रोग मुक्त किया। पर अखण्ड ज्योति संस्थान के निवास काल में रोग निवारण की इस प्रक्रिया को वे थोड़े अलग ढंग से सम्पन्न करते थे। इसके लिए वे रोगी का पहना हुआ कपड़ा माँगते थे, और उसके प्राणों के

सूक्ष्म परमाणुओं का परीक्षण आध्यात्मिक रीति से करते थे। बाद में स्थिति के अनुरूप उसकी चिकित्सा करते थे।

ऐसे ही एक बार उनसे गुजरात के देवेश भाई ने अपने किसी रिश्तेदार के बारे में उन्हें लिखा। ये रिश्तेदार कई बुरी आदतों का शिकार थे। हालाँकि इनका स्वास्थ्य काफी अच्छा था। गुरुदेव ने देवेश भाई से इनका पहना हुआ कपड़ा मँगाया। कपड़े के आध्यात्मिक परीक्षण के बाद उन्होंने देवेश भाई को चिट्ठी लिखी कि तुम्हारे इन रिश्तेदार के जीवन के दीये का तेल चुक गया है और अब शीघ्र ही इनकी ज्योति बुझने वाली है। गुरुदेव के इस पत्र पर देवेश भाई को यकीन ही नहीं हुआ। क्योंकि ये रिश्तेदार तो पर्याप्त स्वस्थ थे। देवेश भाई गुरुदेव की इस चिट्ठी को लेकर सीधे मथुरा पहुँचे। सामने मिलने पर भी गुरुदेव ने अपनी उन्हीं बातों को फिर से दुहराया। सभी को अचरज तो तब हुआ जब ये रिश्तेदार महोदय पंद्रह दिनों बाद चल बसे। इस पर गुरुदेव ने उन्हें पत्र लिखकर कहा-यदि जीवनीशक्ति बिल्कुल भी न बची हो और संयम-सदाचार की अवहेलना के कारण जीवन के पात्र में छेद ही छेद हैं; तो आध्यात्मिक चिकित्सा असम्भव है। आध्यात्मिक चिकित्सा के लिए आध्यात्मिक जीवनशैली को अपनाना बेहद जरूरी है।



जीवनशैली आध्यात्मिक हो

व्यवहार चिकित्सा के आध्यात्मिक आयाम भी हैं, जो इसे सही अर्थों में सम्पूर्णता देते हैं। और यह आध्यात्मिक व्यवहार चिकित्सा का नया रूप लेती है। इस प्रक्रिया में आध्यात्मिक जीवनशैली की तकनीकों को अपना कर गहरे मन की गाँठें खोली जाती है। इन गाँठों के खुलते ही व्यक्ति की जीवन दृष्टि बदलती है और उसका व्यवहार सँवर जाता है। सैद्धान्तिक एवं प्रायोगिक रूप से यह व्यवहार तकनीकों के कारण कहीं अधिक प्रभावशाली है। इसमें भी मनोचिकित्सा की ही भाँति रोगी के असामान्य व्यवहार और उसके कारणों की गहरी पड़ताल करते हैं। यह पड़ताल सामान्य विश्लेषण द्वारा भी हो सकती है और आध्यात्मिक चिकित्सक की अन्तर्दृष्टि द्वारा भी।

बिगड़े हुए व्यवहार को सभी देखते हैं, पर यह आखिर बिगड़ा क्यों? इसका पता लगाने की जरूरत शायद कोई नहीं करता। जो उद्दण्ड है, उच्छृंखल है, किन्हीं बुरी आदतों का शिकार है और बुरे कामों में लिप्त है, उसे बस बुरा आदमी कहकर छुट्टी पा ली जाती है। यह बुराई उसमें आयी क्यों? इस सवाल का जवाब कोई नहीं तलाशता। बुरी संगत या बुरे कर्मों के अलावा व्यावहारिक गड़बड़ियों के और आयाम भी हैं। उदाहरण के लिए बेवजह भयातुर हो उठना, एकाएक अवसाद से घिर जाना अथवा फिर अचानक दर्द का दौरा पड़ जाना। रोगी जब इन समस्याओं के कारण बताता है, तो या तो उसे डरपोक समझा जाता है, अथवा फिर उसे सिरफिरा कहकर उसकी हँसी उड़ायी जाती है।

ये कारण होते भी अजीब हैं-जैसे कोई प्रौढ़ व्यक्ति कुत्ते की शकल देखकर घबरा जाता है। पूछने पर यही कहता है कि मुझे तो कुत्ते की फोटो भी डरावनी लगती है। सुनने वालो को लगता है कि बच्चे का डर तो समझ में आता है लेकिन यह प्रौढ़ व्यक्ति भला क्यों डरता है? इसी तरह किसी को अँधेरे से डर लगता है तो फिर कोई ऊँची इमारत देखते ही बेहोश हो जाता है। कई तो

ऐसे होते हैं जिन्हें भीड़ देखते ही दर्द का दौरा पड़ जाता है। कई बेचारे तम्बाकू-सिगरेट, पान-गुटखा आदि बुरी आदतों के शिकार हैं। ऐसे लोग दुनियाँ में या तो हँसी के पात्र बनते हैं अथवा उनके पल्ले जमाने भर की घृणा, उपेक्षा, तिरस्कार, अवहेलना पड़ती है। कोई भी उनके दर्द को सुनने, बाँटने की कोशिश नहीं करता। जबकि यथार्थ यह है कि ऐसे लोग अपने सीने में अनगिनत गमों को छुपाये रहते हैं। उनके मन की परतों में भारी पीड़ा देने वाले गहरे घाव होते हैं।

आध्यात्मिक चिकित्सक उनके इस दर्द को अपने दिल की गहराइयों में महसूस करते हैं। क्योंकि उन्हें इस सच्चाई का पता है कि यथार्थ में कोई भी बुरा या डरपोक नहीं है। सभी में प्रभु का सनातन अंश है। प्रत्येक व्यक्ति अपने भूल रूप में परम दिव्य होने के साथ साहस और सद्‌गुणों का भण्डार है। बस हुआ इतना ही है कि किन्हीं कारणों से उसकी अन्तर्चेतना में कुछ गाँठें पड़ गई है, जिसकी वजह से उसकी आध्यात्मिक ऊर्जा का प्रवाह रुक गया है। यदि ये गाँठें खोल दी जाय तो फिर स्थिति बदल सकती है। हाँ इतना जरूर है कि ये गाँठें बचपन की भी हो सकती हैं और पिछले जीवन की भी। पर यह सौ फीसदी सच है कि व्यक्ति को बुरा या डरपोक बनाने में इन्हीं का प्रभाव काम करता है।

इस सच को अधिक जानने के लिए हमें व्यक्तित्व निर्माण की प्रक्रिया में प्रवेश करना पड़ेगा। किसी का बचपन उसके व्यक्तित्व का अंकुरण है। इसके बढ़तेक्रम में व्यक्तित्व भी बढ़ता है। इस अवधि में कोई भी घटना का मन-मस्तिष्क पर गहरा असर होता है। अब यदि किसी बच्चे को बार-बार अँधेरे से अथवा कुत्ते से डराय जाय और यदि यह डर गहरा होकर किसी मनोग्रंथि का रूप ले ले तो फिर यह बच्चा मन अपनी पूरी उम्र अँधेरे और कुत्तों से डरता रहेगा। यही स्थिति भावनात्मक आघात के बारे में है। जिन्हें हम बुरे और असामाजिक लोग कहते हैं, उनमें से कोई बुरा और असामाजिक नहीं होता। भावनात्मक प्रतिक्रियाओं से उपजे विरोध के स्वर, उपजी विकृतियाँ उन्हें बुरा बना देती हैं। यदि इन मनोग्रंथियों को खोल दिया जाय तो सब कुछ बदल सकता है।

आध्यात्मिक व्यवहार चिकित्सा में चिकित्सक सबसे पहले उसकी पीड़ा-परेशानी को भली प्रकार समझता है। अपने आत्मीय सम्बन्धों व अन्तर्दृष्टि के द्वारा उसकी मनोग्रंथि के स्वरूप व स्थिति का आँकलन करता है। इसके बाद किसी उपयुक्त आध्यात्मिक तकनीक के द्वारा उसकी इस जटिल मनोग्रंथि को खोलता है। इस पूरी प्रक्रिया में सबसे यह जरूरी है कि चिकित्सक के व्यक्तित्व पर रोगी की गहरी आस्था हो। फिर सब कुछ ठीक होने लगता है। उदाहरण के लिए यदि बात किसी अँधेरे भयग्रस्त रोगी की है तो चिकित्सक सब से पहले अँधेरे के यथार्थ से वैचारिक परिचय करायेगा। फिर इसके बारे में और भी अधिक गहराई बतायेगा। बाद में उसे स्वयं लेकर उस अँधेरे स्थान पर ले जायेगा। जहाँ उसे डर लगा करता है। इस पूरी प्रक्रिया में जप या ध्यान की तकनीकों का उपयोग भी हो सकता है, क्योंकि इससे मनोग्रंथियाँ आसानी से खुलती हैं।

यहाँ परम क्रान्तिवीर चन्द्रशेखर आजाद के बचपन चर्चा प्रासंगिक होगी। यूँ तो वह बचपन से साहसी थे। पर कुछ चीजें उन्हें डरा देती थी। इनमें से एक अँधेरा था और एक दर्द। दस-बारह साल की उम्र में उनके यहाँ एक महात्मा आये। यह महात्मा महावीर हनुमान जी के भक्त थे। हनुमान जी की पूजा करना और रामकथा कहना यही उनका काम था। चन्द्रशेखर के गाँव में भी उनकी रामकथा हो रही थी। रामकथा के मार्मिक अंश बालक चन्द्रशेखर को भावविह्वल कर देते थे। तो कुछ प्रसंगों को सुनकर वह रोमाँचित हो जाता। अपनी भावनाओं के उतार-चढ़ावों के बीच बालक चन्द्रशेखर ने सोचा कि ये महात्मा जी जरूर हमारी समस्या का समाधान कर सकते हैं।

और बस उसने अपनी समस्याएँ महात्मा जी को कह सुनायी। उसने कहा-स्वामी जी! मुझे अँधेरे से डर लगता है। महात्मा जी बोले- क्यों बेटा? तो उन्होंने कहा कि अँधेरे में भूत रहते हैं इसलिए। यह सुनकर महात्मा जी बोले- और भी किसी चीज से डरते हो। बालक ने कहा हाँ महाराज-मुझे मार खाने बहुत डर लगता है। उनकी यह सारी बातें सुनकर महात्मा जी ने उन्हें साँझ के समय झुरमुटे में बुलाया। और अपने पास बिठाकर बातें करते रहे। जब

रात थोड़ी गाढ़ी हो चली तो वह उन्हें लेकर गाँव के बाहर श्मशान भूमि की ओर ले चले। जहाँ के भूतों के किस्से गाँव के लोग चटखारे लेकर सुनाते थे।

राह चलते हुए महात्मा जी ने उनसे कहा-जानते हो बेटा-भूत कौन होते हैं ? बालक ने कहा नहीं महाराज। तो सुनो, वे स्वामी जी बोले-भूत वे होते हैं जिनकी अकाल मृत्यु होती है। जो जिन्दगी से डरकर आत्महत्या कर लेते हैं। जो आदमी अपनी जिन्दगी में डरपोक था वह पूरे जीवन कुछ ढंग का काम न कर सका। वह भला मरने के बाद तुम्हारा क्या बिगाड़ेगा ? रही बात मार खाने से डरने की तो शरीर तो वैसे भी एक दिन मरेगा और मन-आत्मा मरने वाले नहीं है। इन बातों को करते हुए वे महात्मा गाँव के बाहर श्मशन भूमि में आ गये। श्मशान भूमि में कहीं कोई डर का कारण न था। इस अनुभव ने बालक चन्द्रशेखर को परम साहसी बना दिया। हाँ यह जरूर है कि महात्मा जी ने उन्हें रामभक्त हनुमान जी की भक्ति सिखायी। महात्मा जी की इस आध्यात्मिक चिकित्सा ने उन्हें इतना साहसी बना दिया कि अंग्रेज सरकार भी उनसे डरने लगती। उन महात्मा जी का यह भी कहना था कि यदि कोई विशिष्ट आध्यात्मिक प्रयोग करने हों तो किसी तपस्थली का चयन करना चाहिए, क्योंकि ये आध्यात्मिक चिकित्सा के केन्द्र होते हैं।



अचेतन की चिकित्सा करने वाला एक विशिष्ट सैनिटोरियम

आध्यात्मिक चिकित्सा केन्द्र के रूप में शान्तिकुञ्ज द्वारा की जा रही सेवाएँ विश्वविदित हैं। ब्रह्ममुहूर्त से ही यहाँ मानवीय चेतना के जागरण के स्वर ध्वनित होने लगते हैं। गायत्री महामंत्र के जप एवं भगवान् सूर्य के ध्यान के साथ यहाँ रहने वाले व यहाँ आये अनगिन साधक अरुणोदय का अभिनन्दन करते हैं। और इन्हीं क्षणों में मिलती है उन्हें उस प्रकाश दीप की प्रेरणा जिसे शान्तिकुञ्ज के संस्थापक ने सन् १९२६ ई. के वसन्त पर्व पर देवात्मा हिमालय की दिव्य विभूति की साक्षी में जलाया था। जो तब से लेकर अब तक अखण्ड जलते हुए असंख्य जनों को प्रकाशभरी प्रेरणाएँ बाँट रहा है। अनन्त अनुभूतियाँ इसकी साक्षी में उभरीं और चिदाकाश की धरोहर बनी हैं। यह अविरल कथा-गाथा आज भी कही जा रही है।

सूर्योदय के साथ ही इसके मद्धम स्वर मेघमन्द्र हो जाते हैं। शिवालिक पर्वतमालाओं की घाटियों में बसे शान्तिकुञ्ज के मध्य बनी यज्ञशाला में वैदिक मंत्रों के सविधि सस्वर गान के साथ स्वाहा की गूँज उभरती है तो न जाने कितने लोगों की शारीरिक-मानसिक व्याधियाँ एक साथ भस्म हो जाती हैं। यह स्वाहा का महाघोष ऐसा होता है जैसे भगवान् महाकाल ने विश्व के महारोगों को भस्मीभूत करने के लिए महास्वाहा का उच्चारण किया हो। पवित्र यज्ञ के अनन्तर यहाँ आये हुए लोग विशिष्ट साधकों के पवित्र वचनों को सुनते हैं। इससे उनकी विचार चेतना नया प्रशिक्षण पाती है। इन विचार औषधियों के बाद उन्हें माँ गायत्री का महाप्रसाद मिलता है।

महाप्रसाद के अनन्तर साधक-साधिकाएँ यहाँ अपने प्रशिक्षण का नया क्रम प्रारम्भ करते हैं। इसके द्विआयामी दृश्य है। पहले आयाम में नव दिवसीय

सत्र के कार्यक्रम हैं जो व्यक्ति की आत्मचेतना को परिष्कृत व प्रशिक्षित करने के लिए हैं। दूसरा आयाम एक मासीय सत्र के कार्यक्रमों का है, जो सामूहिक लोकचेतना को परिष्कृत व प्रशिक्षित करने के लिए है। यह प्रशिक्षण सम्पूर्ण दिवस चलता रहता है। साँझ होते ही भगवान् भुवन भास्कर तो विश्व के दूसरे गोलार्ध को प्रकाशित करने चले जाते हैं। परन्तु जाते-जाते वे यहाँ के साधकों को आशीष देना नहीं भूलते। उनके आशीष की यह लालिमा काफी समय तक साधकों के मन को अपने रंग में रँगती रहती है।

इसी के साथ साधकों के रंग में रँगी साँझ साधकों के अन्तर्गगन में विलीन होती है। और निशा के प्रथम प्रहर में साधकों के प्रशिक्षण का शेष भाग पूरा होता है। इसके बाद सभी विधाता का स्मरण करते हुए निद्रालीन होने लगते हैं। लेकिन इनमें कुछ ऐसे होते हैं, जो अपने अन्तराल में सद्गुरु के संकेतों को पल-पल अवतरित होते हुए अनुभव करते हैं। इस अकथनीय अनुभवों के साथ उनकी निशीथ कालीन साधना प्रारम्भ होती है। ये साधक अपने आराध्य गुरुदेव को दिये गये वचन के अनुसार महानिशा में शयन को महापाप समझते हैं। जो सचमुच में साधक हैं वे महानिशा में कभी सोते नहीं। उनके लिए यह समय सघन साधना में विलीन विसर्जित होने के लिए है, न कि मोह निद्रा के महापाश में बँधने के लिए।

सूक्ष्म में विद्यमान सद्गुरु की सत्ता के संकेतों के अनुसार संचालित ऐसों की साधना अदृश्य की प्राण ऊर्जा को सधन करती है। युगऋषि के महाप्राणों में विलीन होने वाले उनके प्रण दृश्य में प्रेरणा बनकर उभरते हैं। इन प्रेरणाओं से विचार तंत्र प्रशिक्षित होता है और व्यवहार रूपान्तरित। मानव जीवन में शान्तिकुञ्ज की अदृश्य संवेदनाएँ एवं दृश्य क्रियाकलाप चौंकाने वाले प्रभाव उत्पन्न करते हैं। ये प्रभाव किसी एक की विचार संकल्पना नहीं, बल्कि देव संस्कृति विश्वविद्यालय के अनेकों शोधार्थियों के अनुसंधान का निष्कर्ष है।

पिछले सत्र में देव संस्कृति विश्वविद्यालय के मानव चेतना व योग विज्ञान विभाग एवं नैदानिक मनोविज्ञान विभाग के विद्यार्थियों ने अपने लघुशोध अध्ययन के लिए शान्तिकुञ्ज को विषय चुना था। इन शोध करने वाले छात्र-

छात्राओं की संख्या ७५ थी और इनमें से आधे से अधिक छात्र-छात्राओं के शोध की विषयवस्तु यही थी कि शान्तिकुञ्ज किस भाँति आध्यात्मिक चिकित्सा का कार्य कर रहा है। यहाँ का वातावरण, यहाँ का प्रशिक्षण, यहाँ की जीवनशैली किस भाँति यहाँ आने वाले लोगों की शारीरिक व मानसिक व्याधियों का शमन करते हैं।

इसके लिए शोध छात्र-छात्राओं ने शान्तिकुञ्ज के आध्यात्मिक अनुभूतियों के काव्य को अध्यात्म के वैज्ञानिक प्रयोगों में रूपान्तरित किया। इस रूपान्तरण में उन्होंने शान्तिकुञ्ज की अदृश्य एवं दृश्य गतिविधियों के निम्न आयामों की व्याख्या की। इन शोध विद्यार्थियों ने इस आध्यात्मिक चिकित्सा केन्द्र में संवेदित अदृश्य के दिव्य स्पन्दनों को अभिप्रेरक कारकों (मोटीवेशन फैक्टर्स) के रूप में स्वीकारा। उन्होंने यहाँ स्वयं रहकर अनुभव किया कि शान्तिकुञ्ज में प्रवेश करते ही कोई दिव्य प्रेरणा हृदय में हिलोरे की तरह उठती है और आदर्शवादी दिशा में कुछ विशेष करने के लिए प्रेरित करती है। इनके अनुसार इन प्रेरणाओं में इतना प्राण बल होता है कि वे अभिवृत्तियों में परिवर्तन लाती हैं।

इसी के साथ इन शोधार्थियों ने यह कहा कि शान्तिकुञ्ज के दृश्य क्रियाकलापों में सर्वप्रथम यहाँ चलने वाला प्रशिक्षण है। जिसे वैज्ञानिक भाषा 'काग्नीटिव रिस्ट्रक्चरिंग' यानि कि बोध तंत्र का पुनर्निर्माण कह सकते हैं। व्यक्ति के जीवन की प्रधान समस्या है- विचार तंत्र की गड़बड़ी, जिसके कारण ही उसके जीवन में शारीरिक-मानसिक परेशानियाँ आ खड़ी हुई हैं। इन शोध विद्यार्थियों ने अपने शोध कार्यों में यह अनुभव किया है। शान्तिकुञ्ज के प्रशिक्षण के द्वारा सफलतापूर्वक काग्नीटिव रिस्ट्रक्चरिंग होती है। इससे चिंतन को नयी दृष्टि मिलती है और यहाँ आने वालों को मनोरोगों से छुटकारा मिलता है।

शान्तिकुञ्ज के क्रियाकलापों का अगला आयाम यहाँ की जीवन शैली है। जिसे वैज्ञानिक भाषा में 'बिहैवियरल मॉडीफिकेशन' या व्यावहारिक बदलाव की प्रक्रिया कहा जा सकता है। यह सच है कि व्यावहारिक तकनीकों द्वारा मनुष्य को अनेकों रोगों से मुक्त किया जा सकता है। शान्तिकुञ्ज की जीवनशैली

के ये चमत्कार शोध प्रयासों के निष्कर्ष के रूप में सामने आये। इन निष्कर्षों में पाया यही गया है कि यहाँ नौ दिवसीय एवं एक मासीय में आने वाले लोग असाधारण रूप से अपने शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य को उपलब्ध करते हैं। एक-दो नहीं, दो दर्जन से भी अधिक शोध निष्कर्षों से आध्यात्मिक चिकित्सा केन्द्र के रूप में शान्तिकुञ्ज की सफलता प्रभावित हुई है और यह सब इस महान् ऊर्जा केन्द्र के संस्थापक आध्यात्मिक चिकित्सा के परमाचार्य युगऋषि परम पूज्य गुरुदेव की सक्रिय तपश्चेतना का सुफल है।



अथर्ववेदीय चिकित्सा पद्धति के प्रणेता युगऋषि

आध्यात्मिक चिकित्सा के आचार्य परम पूज्य गुरुदेव ने वैदिक महर्षियों की परम्परा के इस युग में नवजीवन दिया। उन्होंने अध्यात्म चिकित्सा के वैदिक सूत्रों, सत्यों एवं रहस्यमय प्रयोगों की कठिन साधना दुर्गम हिमालय में सम्पन्न की। उनके द्वारा दिए गए संकेतों के अनुसार यह जटिल साधना स्वयं वैदिक युग के महर्षियों के सान्निध्य में सम्पन्न हुई। वामदेव, कहोड़, अथर्वण एवं आङ्गिरस आदि ये महर्षि अभी भी अपने अप्रत्यक्ष शरीर से देवात्मा हिमालय में निवास करते हैं। परम गुरु स्वामी सर्वेश्वरानन्द जी ने पूज्य गुरुदेव को उनसे मिलवाया था। उन सबने गुरुदेव की पात्रता, पवित्रता व प्रामाणिकता परख कर उन्हें अध्यात्म चिकित्सा के सभी रहस्यों से अवगत कराया।

यूं तो ऐसी रहस्यात्मक चर्चाएँ गुरुदेव कम ही किया करते थे। फिर भी यदा-कदा प्रश्नों के समाधान के क्रम में उनके मुख से ऐसे रहस्यात्मक संकेत उभर आते थे। ऐसे ही क्रम में एक दिन उन्होंने कहा था कि अध्यात्म चिकित्सा की बातें बहुत लोग करते हैं, लेकिन इसका मर्म बहुत इने-गिने लोग जानते हैं। अध्यात्म चिकित्सा दरअसल वेदविद्या है। यूं तो इसका प्रारम्भ ऋग्वेद से ही हो जाता है, यजुष और साम में भी इसके प्रयोग मिलते हैं। लेकिन इसका समग्र व संवर्धित रूप अथर्ववेद में मिलता है। इस अथर्वण विद्या को सही व सम्यक् ढंग से जानने पर ही अध्यात्म चिकित्सा के सभी रहस्य जाने जा सकते हैं। यह बताने के बाद उन्होंने धीमे स्वर में कहा कि मैंने स्वयं महर्षि अथर्वण एवं महर्षि अंगिरस से इन रहस्यों का ज्ञान प्राप्त किया है।

शब्द व्युत्पत्ति के आधार पर 'अथर्वा' शब्द का अर्थ 'अचंचलता की स्थिति' है। 'थर्व इति गतिर्नाम न थर्व इति अथर्वा'। थर्व का मतलब गति है और गति का अर्थ चंचलता है। शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक आदि सभी प्रकार

की चंचलता को अथर्वविद्या की अध्यात्म चिकित्सा से नियंत्रित करके साधक सम्पूर्ण स्वस्थ व स्थितप्रज्ञ बनाया जाता है। परम पूज्य गुरुदेव के मुख से हमने एक और बात सुनी है। वह कहते थे कि वैदिक वाङ्मय में अथर्ववेद के 'ब्रह्मवेद', 'भैषज्यवेद' आदि कई नाम मिलते हैं। इन्हीं में से एक नाम 'अथर्वाङ्गिरस' भी है।

इसका सत्य यह है कि 'अथर्वा' और 'आङ्गिरस' ये दो अलग-अलग ऋषि थे। इन्होंने ही सर्वप्रथम अग्नि को प्रकट करके यज्ञ चिकित्सा का आविष्कार किया था। अथर्ववेद में अथर्वा ऋषि द्वारा दृष्ट ऋचाएँ अध्यात्मपरक, सुखकारक, अभ्युदय प्रदान करने वाली और श्रेय-प्रेय देने वाली हैं। और आङ्गिरस ऋषि द्वारा दृष्ट ऋचाएँ अभिचार परक, शत्रुसंहारिणी, कृत्यादूषण, शापनिवारिणी, मारण, मोहन, वशीकरण आदि प्रधान हैं। सार तथ्य यह है कि आथर्वण मंत्र सृजनात्मक हैं और आङ्गिरस मंत्र संहारात्मक हैं। अथर्ववेद में आथर्वण और आङ्गिरस दो प्रकार की चिकित्सा विधियाँ होने के कारण अथर्ववेद को 'अथर्वाङ्गिरस' कहा जाता है।

शब्द व्युत्पत्ति की दृष्टि से हम अथर्वा का मर्म तो जान चुके अब यदि 'आङ्गिरस' का मर्म अनुभव करें तो शब्द व्युत्पित्ति 'आङ्गिरस' का अर्थ अंगों में प्रवाहित होने वाला रस बताती है। मनुष्य शरीर के प्रत्येक अंग अवयव में 'प्राणरस' प्रवाहित होता रहता है। इसी प्राणरस का प्रवाह प्रत्येक अंग-अवयव को सक्षम व सशक्त बनाया करता है। इस रस के सूखने पर या अवरूद्ध होने पर अथवा इसका अभाव होने पर इन्द्रियाँ शिथिल और निष्क्रय हो जाती हैं। और इनका कार्य-व्यापार ठप्प पड़ जाता है। जब मनुष्य के शरीर की यह स्थिति होती है, तब उसे लकवा, फालिज और मधुमेह आदि रोग हो जाया करते हैं।

शरीर में प्रवाहित होने वाले इस रस में जब विकार उत्पन्न हो जाते हैं, तब अनेकों तरह की विकृतियाँ व व्याधियाँ पनपने लगती हैं। मनुष्य के मन-मस्तिष्क व हृदय रोगी हो जाते हैं। शरीर के इस तरह रोगग्रस्त होने पर अथर्ववेद के आध्यात्मिक चिकित्सा विधान द्वारा जलावसेचन, हस्तामिमर्श, मणिबन्धन, हवन एवं उपस्थान आदि करने से यथा अथर्ववेदीय मंत्रों द्वारा

अभिमंत्रित औषधि, भेषज उपचार से मनुष्य रोग-दोष मुक्त होकर स्वस्थ और निरोग बनता है। जलावसेचन, मणिबन्धन, औषधि, भेजष आदि उपचार से शरीर के अंगों के विकृत या शुष्क रस सजीव व सशक्त बनते हैं।

युगऋषि परम पूज्य गुरुदेव इस अथर्ववेदीय अध्यात्म चिकित्सा के विशेषज्ञ थे। उनका कहना था कि असाध्य रोग, भयंकर दुर्घटना, मारण, कृत्या आदि अभिचार कर्म दुर्भाग्य, दैत्य और प्रेतबाधा, पागलपन को आध्यात्म चिकित्सा का मर्मज्ञ केवल सिर पर जल छिड़कर या सिर पर हाथ रखकर अथवा मणियां बांधकर दूर कर सकता है। जो इन प्रयोगों को जानते हैं, उन्हें इस सत्य का ज्ञान है कि अथर्ववेदीय अध्यात्म चिकित्सा कोई चमत्कार न होकर एक प्रायोगिक व वैज्ञानिक व्यवस्था है।

परम पूज्य गुरुदेव के ज्येष्ठ पुत्र श्री ओमप्रकाश जो अपनी किशोरावस्था में उनके साथ रहा करते थे, गुरुदेव की आध्यात्मिक चिकित्सा से जुड़ी अनेकों अनुभूतियाँ सुनाते हैं। उन्हें अभी भी हैरानी होती है कि कैसे एक ही पत्ती, जड़ अथवा किसी छोटी सी आटे से बनी गोली से वे असाध्य रोगों को ठीक कर दिया करते थे। श्री ओमप्रकाश जी बताते हैं कि चिकित्सा के नाम पर हम उन दिनों आयुर्वेद जानते थे। गुरुदेव के एक ज्येष्ठ भ्राता भी वैद्य थे। उनके द्वारा दी जाने वाली दवाओं का स्वरूप, प्रकार व उनकी विविधता अलग ढंग की होती थी। पर गुरुदेव का तो सभी कुछ अद्‌भुत था। यहाँ तो वे सामान्य सी पत्ती द्वारा मरणासन्न को जीवनदान देते थे।

श्री ओमप्रकाश जी का कहना है कि उनके प्रयोगों में एक विचित्रता और भी थी। वह यह कि जरूरी नहीं कि रोगी उनके समीप ही हो, उसके हजारों किलोमीटर दूर होने से भी उनकी चिकित्सा में कोई कमी नहीं आती थी। एक सामान्य से धागे को उसके पास भेजकर वह उसे भला-चंगा बना देते थे। वह कहते हैं कि उन दिनों तो मैं अनजान था। पर आज लगता है कि सचमुच ही यह अथर्ववेदीय आध्यात्मिक चिकित्सा थी। शान्तिकुञ्ज में तप की अवधि में परम पूज्य गुरुदेव अपने विश्व कल्याण सम्बन्धी उच्चस्तरीय प्रयोगों में संलग्न हो गए थे। और उनकी चिकित्सा का स्वरूप संकल्प प्रयोगों व इच्छाशक्ति

तक ही सिमट गया था। रोगी अभी भी ठीक होते थे। उनकी संख्या भी पहले से अनेकों गुना बढ़ गयी थी। किन्तु अब प्रयोग-प्रक्रियाएँ बदली हुई थी। अब इन अनेकों के लिए उनका संकल्प ही पर्याप्त था।

जीवन के अन्तिम वर्षों में उनकी दृष्टि भविष्य की ओर थी। सन् १९८९ में जाड़ों में जब वह अपने कमरे के बगल वाले आंगन में पलंग पर बैठे हुए थे। उन्होंने पास बैठे हुए अपने शिष्यों से पूछा- क्यों जी मेरे जाने के बाद तुम लोग आने वालों का किस तरह कल्याण करोगे? उत्तर में सन्नाटा छाया रहा। कोई कुछ न बोला। तब वह स्वयं बोले, देखो देह छोड़ने के बाद भी मेरी चेतना हमेशा ही शान्तिकुञ्ज परिसर में व्याप्त रहेगी। भविष्य में जो लोग यहाँ आएँ उनसे कहना कि गुरुदेव ने केवल शरीर छोड़ा है, वे कहीं गए नहीं हैं, यहीं पर हैं। उनका तप प्राण यहाँ के कण-कण में व्याप्त है। तुम लोग इसे अपने मन, प्राण में अनुभव करो। और जितने समय यहाँ रहो, यह सोचो कि मैं अपने रोम-रोम से प्रत्येक श्वास से गुरुदेव के तप प्राण को धारण कर रहा हूँ। इससे उनकी सभी तरह की चिकित्सा हो जाएगी। गुरुदेव के द्वारा कहा हुआ यह सच आज भी प्रामाणित हो रहा है। उन्होंने आध्यात्मिक चिकित्सा का जो प्रवर्तन किया आज उसे विश्वदृष्टि में मान्यता मिल रही है।



भविष्य का सम्पूर्ण व समग्र विज्ञान : अध्यात्म

आध्यात्मिक चिकित्सा के सम्बन्ध में विश्व दृष्टि इन दिनों सार्थक ढंग से बदली है। विश्व भर के मनीषियों के दृष्टिकोण आश्चर्यजनक ढंग से परिवर्तित हुए हैं। लोकदृष्टि भी इस सम्बन्ध में परिमार्जित व परिवर्तित हुई है। आज से कुछ सालों पहले आध्यात्मिक सिद्धान्तों, तकनीकों व प्रयोगों को अवैज्ञानिक कहकर खारिज कर दिया जाता था। लोकमानस भी वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं से मिली जानकारियों को जीवन के सर्वोच्च सन्देश के रूप में सुनता व स्वीकारता था। पर इक्कीसवी सदी के इन चार सालों में स्थिति काफी कुछ बदली है। विश्व मनीषियों को लगने लगा है कि प्रायोगिक पड़ताल के बिना आध्यात्मिक दृष्टिकोण व तकनीकों को नकारना अवैज्ञानिकता की पराकाष्ठा है। इसी तरह से लोकमानस को यह अनुभूति हुई है कि प्रयोगशालाओं से मिली जानकारियों में शुभ के साथ अशुभ भी मिला हुआ है। और इनके अन्धे उपयोग से हानियाँ भी सम्भव है।

अनुभवों की इस शृंखला में कुछ और अनुभव भी हुए हैं। वैज्ञानिक चिकित्सा के सभी आयामों की अनेकों असफलताएँ व भारी दुष्प्रभाव भी सामने आए। इस सच को सभी जानते हैं कि सभी ने प्राय: सम्पूर्ण बीसवीं सदी साइड इफेक्ट्स से लड़ते-झगड़ते व पटखनी खाते गुजारी है। इस साइड इफेक्ट्स की वजह से न जाने कितने मासूम मौत की नींद सोए हैं। एक बीमारी ठीक करने के चक्कर में कितनी ही नयी बीमारियाँ उपहार में मिली हैं। दुनिया भर के कर्णधारों ने इस पर चर्चा भी की, चिन्ता भी जतायी परन्तु समाधान न खोज सके। अन्त में हार-थक कर सभी का ध्यान वैकल्पिक चिकित्सा की ओर गया। चुम्बक चिकित्सा, रंग चिकित्सा, एक्यूप्रेशर न जाने कितनी ही तकनीकें आजमायी गयीं। इसी क्रम में आध्यात्मिक तकनीकों को भी परखा गया। इससे जो नतीजे मिले, उससे सभी को भारी अचरज हुआ। क्योंकि इनमें आशातीत सफलता मिली थी।

और इसमें सबसे बड़ी बात तो यह है कि ये आध्यात्मिक तकनीकें अभी तक केवल आधे-अधूरे ढंग से ही जाँची-परखी गयी हैं। इन्हें अव्यवस्थित एवं अस्त-व्यस्त तरीके से ही प्रयोग में लाया गया है। इनके प्रयोगिक क्रम में अभी इनकी वास्तविक और सम्पूर्ण विधि-व्यवस्था तो अपनायी ही नहीं गयी। इसके बावजूद मिलने वाले नतीजों ने वैज्ञानिकों को हैरान कर रखा है। इनसे मिलने वाली विश्रान्ति, घटने वाला तनाव, जीवनी शक्ति में भारी अभिवृद्धि आदि कुछ ऐसे परिणाम हैं, जिन्होंने सभी के दृष्टिकोण को परिवर्तित किया है। कभी इसे अवैज्ञानिक कहने वाले वैज्ञानिक इसकी वैज्ञानिकता को स्वीकारने पर विवश हुए हैं।

इनमें से कुछ ने तो इस बिन्दु पर अपने विचारोत्तेजक निष्कर्ष भी प्रकाशित किए हैं। इन्हीं निष्कर्षों में से एक है, मार्टिन रूथ चाइल्ड की पुस्तक 'स्प्रिचुयैलिटी एण्ड इट्स साइन्टिफिक डामेन्शन्स' यानि कि आध्यात्मिकता और इसके वैज्ञानिक आयाम। मार्टिन रूथ चाइल्ड प्रख्यात् न्यूरोलॉजिस्ट हैं। उनके द्वारा किए शोध कार्यों को विज्ञान जगत् में सम्मानपूर्वक स्वीकार किया जाता है। उन्होंने अपनी पुस्तक में आध्यात्मिक दृष्टि, सिद्धान्त व प्रयोगों से सम्बन्धित कई महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं पर चर्चा की है। उनका कहना है, जो आध्यात्मिक सिद्धान्तों की वैज्ञानिकता पर बिना किसी प्रायोगिक निष्कर्षों के प्रश्न खड़ा करते हैं, उन्हें सबसे पहले अपने वैज्ञानिक होने की जाँच करनी चाहिए।

रूथ चाइल्ड का कहना है कि विज्ञान किसी पुस्तक या विषय का नाम नहीं है। यह एक विशिष्ट शोध विधि है। जो एक खास तरह से अध्ययन करके किसी सत्य या सिद्धान्त को प्रमाणित करती है। यह कहते हुए मार्टिन रूथ चाइल्ड एक सवाल उठाते हैं कि आध्यात्मिक सिद्धान्तों को क्या किसी ने वैज्ञानिक शोध विधि के आधार पर परखने की कोशिश की है। यदि हाँ, तो फिर उनके शोध पत्रों पर सार्थक चर्चा होनी चाहिए। यदि नहीं तो फिर इन्हें किसी को अवैज्ञानिक कहने के क्या आधार हैं। इस तरह से तो अवैज्ञानिकता की बातें करना स्वयं ही अवैज्ञानिक है।

रूथ चाइल्ड अपनी इसी पुस्तक के एक अन्य हिस्से में कहते हैं कि इन दिनों आध्यात्मिक चिकित्सा की ध्यान आदि जो भी तकनीकें प्रयोग में लायी

जा रही हैं, उनके परिणाम उत्साहवर्धक हैं। ये न केवल चिकित्सा जगत् के लिए बल्कि सम्पूर्ण मानवता के लिए कल्याणकारी हैं। योग और अध्यात्म की जो भी तकनीकें शारीरिक व मानसिक रोगों को ठीक करने के लिए प्रयोग में लायी जा रही हैं, उनके परिणाम किसी भी वैज्ञानिक को यह कहने पर विवश कर सकती हैं कि 'स्प्रिचुयैलिटी इस द इन्टीग्रल साइन्स ऑफ द फ्यूचर'। यानि कि अध्यात्म भविष्य का सम्पूर्ण विज्ञान है।

शारीरिक रोगों के साथ आध्यात्मिक तकनीकों के प्रयोग मनोरोगों पर भी किए गए हैं। इस सम्बन्ध में विलियम वेस्ट की पुस्तक 'साइकोथेरेपी एण्ड स्प्रिचुयैलिटी' पठनीय है। इस पुस्तक में विख्यात मनोचिकित्सक विलियम वेस्ट का कहना है कि अब इस जमाने में मनोचिकित्सा व अध्यात्म विद्या के बीच खड़ी दीवार टूट रही है। मनोरोगों का सही व सम्पूर्ण इलाज आध्यात्मिक तकनीकों के प्रयोग से ही सम्भव है। उन्होंने एक अन्य शोधपत्र में यह भी कहा है कि आध्यात्मिक जीवन शैली को अपनाने से लोगों को मानसिक रोगों की सम्भावना नहीं रहती। इस क्रम में उन्होंने प्रार्थना व ध्यान को मनोरोगों की कारगर औषधि बताया है।

अध्यात्म चिकित्सा के सम्बन्ध में विश्वदृष्टि को परिवर्तित करने वालों में डॉ. ब्रायन वीज़ का नाम उल्लेखनीय है। पेशे से डॉ. वीज़ साइकिएट्रिस्ट हैं। परन्तु अब वे स्वयं को आध्यात्मिक चिकित्सक कहलाना पसन्द करते हैं। उनकी कई पुस्तकें जिनकी चर्चा पहले भी की जा चुकी है– अध्यात्म चिकित्सा की सार्थक उपयोगिता को प्रमाणित करती हैं। इनका कहना है कि आध्यात्मिक सिद्धान्तों व साधना से ही सम्पूर्ण जीवन बोध सम्भव है। चिकित्सा के सम्बन्ध में जब भी वैज्ञानिक असफलताओं की बात होती है, तो इसका कारण एकांगीपन होता है। विज्ञान कहता है कि इन्सान केवल देह मात्र है, जो सच नहीं है। हमारा जीवन देह, प्राण, मन व आत्मा का संयोग है। और ये सम्पूर्ण आयाम आध्यात्मिक दृष्टि के बिना नहीं जाने जा सकते।

एक अन्य वैज्ञानिक रिचर्ड कार्लसन का अपने शोध निष्कर्ष 'स्प्रिचुयैलिटी : कम्पलीट साइन्स ऑफ लाइफ' यानि कि आध्यात्मिकता जीवन का सम्पूर्ण

विज्ञान, में इन तथ्यों का खुलासा किया है। उनका मानना है कि अध्यात्म के बिना जीवन का सम्पूर्ण बोध असम्भव है। कार्लसन कहते हैं कि जिस तरह से कटी हुई अंगुलियों के सहारे मानवीय देह की समग्रता को नहीं जाना जा सकता, उसी तरह केवल देह के बलबूते सम्पूर्ण अस्तित्त्व को जानना असम्भव है। उन्होंने अपनी पुस्तक में इस सम्बन्ध में कई सत्यों व तथ्यों का विश्लेषण करते हुए कहा है कि जिस तरह बीसवीं सदी विज्ञान की सदी साबित हुई है। उसी तरह यह इक्कीसवीं सदी आध्यात्म की सदी के रूप में देखी, जानी व अनुभव की जाएगी। आध्यात्मिक जीवन दृष्टि, अध्यात्म चिकित्सा के सिद्धान्त व प्रयोगों को सभी इस सदी की महानतम उपलब्धि के रूप में अनुभव करेंगे। इसलिए यही उपयुक्त है कि आध्यात्मिक स्वास्थ्य का अर्थ समझें व अध्यात्म चिकित्सा की ओर बढ़ाएँ कदम।



पंचशीलों को अपनाएँ, आध्यात्मिक चिकित्सा की ओर कदम बढ़ाएँ

आध्यात्मिक स्वास्थ्य का अर्थ समझें- आध्यात्मिक चिकित्सा की ओर बढ़ाएँ कदम! यही वह दैवी सन्देश है- जिसे इस समय अन्तस् सुना रहा है। हिमालय की हवाओं ने जिसे हम सबके लिए भेजा है। नवरात्रि के पवित्र पलों में इसी की साधना की जानी है। भगवती महाशक्ति से यही प्रार्थना की जानी है कि हम सभी आध्यात्मिक स्वास्थ्य का अर्थ और मर्म समझ सकें। और भारत देश फिर से आध्यात्मिक चिकित्सा में अग्रणी हो। इसी सन्देश को ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान की रजत जयंती के अवसर पर जन-जन को सुनाया जाना है। क्योंकि स्वास्थ्य किसी एक की समस्या नहीं है। अकेले अपने महादेश भारत में ही नहीं- सम्पूर्ण विश्व के कोटि-कोटि जन इससे ग्रसित हैं। सच तो यह है कि जो अपने को स्वस्थ कहते हैं, वे भी किसी न किसी रूप में बीमार हैं।

जिनका तन ठीक है, उनका मन बीमार है। आध्यात्मिक स्वास्थ्य के अर्थ से प्रायः सभी अपरिचित हैं। हालांकि इसका परिचय-इसकी परिभाषा इतनी ही है कि तन और मन ही नहीं हमारी जीवात्मा भी अपने स्व में स्थित हो। हमारी आत्म शक्तियाँ जीवन के सभी आयामों से अभिव्यक्त हों। हम भगवान् के अभिन्न अंश हैं यह बात हमारे व्यवहार, विचार व भावनाओं से प्रमाणित हो। यदि ऐसा कुछ हमारी अनुभूतियों में समाएगा तभी हम आध्यात्मिक स्वास्थ्य का सही अहसास कर पाएँगे। इसी के साथ हमारे- हम सबके कदम साहसिक साधनाओं की ओर बढ़ने चाहिए। तभी हम आध्यात्मिक चिकित्सा की ओर बढ़ सकते हैं और भविष्य में आध्यात्मिक चिकित्सक होने का गौरव पा सकते हैं।

बात जब आध्यात्मिक चिकित्सा की चलती है तो इसे कतिपय क्रियाओं- कर्मकाण्डों व प्रयोगों तक सीमित मान लिया जाता है। और आध्यात्मिक जीवन

दृष्टि की अपेक्षा-अवहेलना की जाती है। इस अवहेलना भरी अनदेखी के कारण ये कर्मकाण्ड और प्रयोग थोड़े ही समय में अपने प्रभाव का प्रदर्शन करके किसी अंधियारे में समा जाते हैं। इस सच को हर हालत में समझा जाना चाहिए कि आध्यात्मिक जीवन दृष्टि ही सभी आध्यात्मिक उपचारों व प्रयोगों की ऊर्जा का स्रोत है। इसकी अनदेखी नहीं की जा सकती है। इसी वजह से जो अध्यात्म चिकित्सा के सिद्धान्तों व प्रयोगों के विशेषज्ञ व मर्मज्ञ हैं उन्होंने पाँच सूत्रों को अपनाने की बात कही है।

इन्हें आध्यात्मिक चिकित्सा के पंचशील की संज्ञा दी जा सकती है। इन्हें मां गायत्री के पंचमुख और उनकी पूजा में प्रयुक्त होने वाला पंचोपचार भी कहा जा सकता है। जिन्हें आध्यात्मिक चिकित्सा में अभिरूचि है उन्हें इस बात की शपथ लेनी चाहिए कि इनका पालन अपने व्यक्तिगत जीवन में संकल्पपूर्वक होता रहे। आध्यात्मिक चिकित्सा के विशेषज्ञों ने इन्हें अपने स्तर पर आजीवन अपनाया है। यही उनकी दिव्य विभूतियों व आध्यात्मिक शक्तियों का स्रोत साबित होता रहा है। अब बारी उनकी है, जो आध्यात्मिक स्वास्थ्य व इसकी प्रयोग विधि से परिचित होना चाहते हैं। इच्छा यही है कि उनमें इन पंचशीलों के पालन का उत्साह उमड़े और वे इसके लिए इसी शारदीय नवरात्रि से साधना स्तर का प्रयत्न प्रारम्भ कर दें।

१. बनें अपने आध्यात्मिक विश्व के विश्वामित्र- जिस दुनिया में हम जीते हैं, उसका चिन्तन व व्यवहार ही यदि अपने को प्रेरित प्रभावित करता रहे तो फिर आध्यात्मिक जीवन दृष्टि अपनाने की आशा नहीं के बराबर रहेगी। लोग तो वासना, तृष्णा और अहंता का पेट भरने के अलावा और किसी श्रेष्ठ मकसद के लिए न तो सोचते हैं और न करते हैं। उनका प्रभाव और परामर्श अपने ही दायरे में घसीटता है। यदि जीवन में आध्यात्मिक चिकित्सा करनी है तो सबसे पहले अपना प्रेरणा स्रोत बदलना पड़ेगा। परामर्श के नए आधार अपनाने पड़ेंगे। अनुकरण के नए आदर्श ढूँढने पड़ेंगे।

इसके लिए हमें आध्यात्मिक चिकित्सा के मर्मज्ञों व विशेषज्ञों को अपना प्रेरणा स्रोत बनाना होगा। हां, यह सच है कि ऐसे लोग विरल होते हैं। हर

गली-कूचे में इन्हें नहीं ढूँढा जा सकता। ऐसी स्थिति में हमें उन महान् आध्यात्मिक चिकित्सकों के विचारों के संसर्ग में रहना चाहिए, जिनका जीवन हमें बार-बार आकर्षित करता है। हमारे प्रेरणा स्रोत युगऋषि परम पूज्य गुरुदेव, महर्षि श्री अरविन्द, स्वामी विवेकानन्द स्तर के कोई महामानव हो सकते हैं। इनमें से किसी से और इनमें से सभी से अपना भाव भरा नाता जोड़ा जा सकता है। अपने जीवन की महत्त्वपूर्ण समस्याओं के समाधान के लिए इनके व्यक्तित्व व विचारों से परामर्श किया जाना चाहिए। इन सबकी हैसियत हमारे जीवन में परिवार के सदस्यों की तरह होनी चाहिए। महर्षि विश्वामित्र की भाँति हमें संकल्पपूर्वक अभी इन्हीं क्षणों में अपना यह नया आध्यात्मिक विश्व बसा लेना चाहिए। दैनिक क्रिया कलापों को करते हुए हमें अपना अधिकतम समय अपने इसी आध्यात्मिक विश्व में बिताना चाहिए। ऐसा हो सके तो समझना चाहिए कि अपनी आध्यात्मिक चिकित्सा का एक अति महत्त्वपूर्ण आधार मिल गया।

२. साधना के लिए बढ़ाएँ साहसिक कदम- आज के दौर में साधना का साहस विरले ही कर पाते हैं। इस सम्बन्ध में बातें तो बहुत होती हैं, पर प्रत्यक्ष में कर दिखाने की हिम्मत कम ही लोगों को होती है। बाकी लोग तो इधर-उधर के बहाने बनाकर कायरों की तरह मैदान छोड़कर भाग जाते हैं। ऐसे कायर और भीरू जनों की आध्यात्मिक चिकित्सा सम्भव नहीं। जो साहसी हैं वे मंत्र-जप व ध्यान आदि प्रक्रियाओं के प्रभाव से अपनी आस्थाओं, अभिरूचि व आकांक्षाओं को परिष्कृत करते हैं। वे अनुभूतियों के दिवा स्वप्नों में नहीं खोते। इस सम्बन्ध में की जाने वाली चर्चा व चिन्ता के शेखचिल्लीपन में उनका भरोसा नहीं होता।

वे तो बस अपनी आध्यात्मिक चेतना के शिखरों पर एक समर्थ व साहसी पर्वतारोही की भाँति चढ़ते हैं। बातें साधना की और कर्म स्वार्थी व अहंकारी के। ऐसे ढोंगियों और गपोड़ियों ने ही आध्यात्मिक साधनाओं को हंसी-मजाक की वस्तु बना दिया है। जो सचमुच में साधना करते हैं, वे पल-पल अपने अन्तस् को बदलने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। उनका विश्वास बातों

व विचारों के परिवर्तन में नहीं अपनी गहराइयों में छुपे संस्कारों के परिवर्तन में होता है। आध्यात्मिक प्रयोगों को ये उत्खनन विधियों के रूप में इस्तेमाल करते हैं। जो इसमें जुटे हैं, वे इन कथनों की सार्थकता समझते हैं। उन्हीं में वह साहस उभरता है, जिसके बलबूते वे अपने स्वार्थ और अहंकार को पाँवों के नीचे रौंदने, कुचलने का साहस रखते हैं। कोई भी क्षुद्रता उन्हें छू नहीं पाती। कष्ट के कंटकों की परवाह किए बगैर वे निरन्तर महानता और आध्यात्मिकता के शिखरों पर चढ़ते जाते हैं।

३. मालिक नहीं माली बनें- मालकियत होने के बोझ के नीचे इन्सान दबता-पिसता रहता है। इस मालिकी की झूठी शान को छोड़कर माली बनने से जिन्दगी हल्की-फुल्की हो जाती है। सन्तोष व शान्ति से समय कटता है। वैसे भी मालिक तो सिर्फ एक ही है- भगवान। उस 'सबका मालिक एक' को झुठलाकर स्वयं मालिक होने के आडम्बर में, झूठी अकड़ में केवल मनोरोग पनपते हैं। जीवन का सत्य निर्झर सूख जाता है। आध्यात्मिक चिकित्सा के विशेषज्ञों का मानना है कि यह संसार ईश्वर का है। मालिकी भी उसी की है। हमें नियत कर्म के लिए माली की तरह नियुक्त किया गया है। उपलब्ध शरीर का, परिवार का, वैभव का वास्तविक स्वामी परमेश्वर है। हम तो बस उसकी सुरक्षा व सुव्यवस्था भर के लिए उत्तरदायी हैं। ऐसा सोचने से अपने आप ही जी हल्का रहेगा, और अनावश्यक मानसिक विक्षिप्तताओं और विषादों की आग में न जलना पड़ेगा।

हम न भूतकाल की शिकायतें करें, और न भविष्य के लिए आतुर हों। वरन् वर्तमान का पूरी जागरूकता एवं तत्परता के साथ सदुपयोग करें। न हानि में सिर पटकें न लाभ में खुशी से पागल बनें। विवेकवान, धैर्यवान, भावप्रवण भक्त की भूमिका निभाएँ। जो बोझ कन्धे पर है, उसे जिम्मेदारी के साथ निबाहें और प्रसन्न रहें। हां, अपने कर्त्तव्य को पूरा करने व उसके लिए मर मिटने में अपनी तरफ से कोई कसर न छोड़ें।

४. बर्बादी से बचें- गलत कामों में अपनी सामर्थ्य को बरबाद करने के दुष्परिणाम सभी जानते हैं। ऐसे लोगों को कुकर्मी, दुष्ट, दुराचारी कहा जाता है।

इन्हें बदनामी मिलती है, घृणित, तिरस्कृत बनते हैं, आत्म प्रताड़ना सहते हुए सहयोग से वंचित होते हैं और पतन के गर्त में जा गिरते हैं। यह सब केवल अपनी सामर्थ्य के गलत नियोजन से होता है। इस महापाप से थोड़े कम दर्जे का पाप है- व्यर्थ में अपनी शक्तियों को गंवाते रहने की मूर्खता। यूं देखने में यह कोई बड़ी बुराई नहीं लगती पर इसके परिणाम लगभग उसी स्तर के होते हैं। आमतौर पर बर्बादी के चार तरीके देखने को मिलते हैं- १. शारीरिक श्रम शक्ति को व्यर्थ में गंवाना- आलस्य, २. मन को अभीष्ट प्रयोजनों में न लगाकर उसे इधर-उधर भटकने देना- प्रमाद, ३. समय का, धन का, वस्तुओं का, क्षमता का बेसिलसिले उपयोग करना, उन्हें बर्बाद करना- अपव्यय, ४. तत्परता, जागरूकता, साहसिकता, उत्साह का अभाव, अन्यमनस्क मन से बेगार भुगतने की तरह कुछ उलटा-सुलटा करते रहना- अवसाद।

इन चार दुर्गुणों की चतुरंगिणी से हम हर समय सजग सैन्य प्रहरी की तरह मुकाबला करें। कभी किन्हीं क्षणों में इन्हें स्वयं पर हावी न होने दें। आलस्य, प्रमाद, अपव्यय व अवसाद के असुरों से हमें पूरी क्षमता से निबटना चाहिए। श्रम निष्ठा, कर्म परायणता, उत्साह, स्फूर्ति, सजगता, विनम्रता, व्यवस्था, स्वच्छता, अपने स्वभाव के अंग होने चाहिए। भीरूता, आत्महीनता, दीनता, निराशा, चिन्ता जैसे किसी दुष्प्रवृत्ति को अपनी सामर्थ्य को बरबाद करने की इजाजत हमें नहीं देनी चाहिए।

५. उदार बनने से चूके नहीं- आध्यात्मिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति उदारता से कभी नहीं चूकता। कृपणता व विलासिता दोनों ही आध्यात्मिक रोगी होने के चिह्न हैं। उदारता तो स्वयं के अस्तित्त्व का विस्तार है। अपने परम प्रिय प्रभु से साझेदारी है। उनके इस विश्व उद्यान को सजाने-संवारने का भावभरा साहस है। जो भक्त हैं, वे उदार हुए बिना रह नहीं सकते। इसी तरह जो शिष्ट हैं, वे अपना समय-श्रम सद्गुरू को सौंपे बिना नहीं रह सकते। हमारे भण्डार भरे रहे और गुरुदेव की योजनाएँ श्रम और अर्थ के अभाव में अधूरी ही रहे, यह भला किन्हीं सुयोग्य शिष्यों के रहते किस तरह सम्भव है। यह न केवल सेवा की दृष्टि से बल्कि स्वयं की आध्यात्मिक चिकित्सा के लिए भी

उपयोगी है। उदार भावनाएँ, उदार कर्म स्वयं ही हमारी मनोग्रन्थियों को खोल देते हैं। मनोग्रन्थियों से छुटकारे के लिए भावभरी उदारता एक समर्थ चिकित्सा विधि का काम करती है।

आध्यात्मिक चिकित्सा के इन पंचशीलों को अपनी जीवन साधना में आज और अभी से समाविष्ट कर लेना चाहिए। यदि इन्हें अपने जीवन में सतत उतारने के लिए सतत कोशिश की जाती रहे तो आध्यात्मिक दृष्टि से असामान्य व असाधारण बना जा सकता है। हम सबके आराध्य परम पूज्य गुरुदेव सदा ही इसी पथ पर चलते हुए आध्यात्मिक चिकित्सा के विशेषज्ञ बने थे। उनके द्वारा निर्देशित यही पथ अब हमारे लिए है। ऐसा करके हम अपने आध्यात्मिक स्वास्थ्य को सदा के लिए प्राप्त कर सकते हैं। और भविष्य में एक समर्थ आध्यात्मिक चिकित्सक की भूमिका का निर्वाह कर सकते हैं। विश्वास है अपने भावनाशील परिजन इससे चूकेंगे नहीं। वे स्वयं तो इस पथ पर आगे बढ़ेंगे ही, दूसरों में भी आन्तरिक उत्साह जगाने में सहयोगी-सहायक बनेंगे। ऐसा होने पर अपने भारत देश की आध्यात्मिक चिकित्सा की परम्परा को नवजीवन मिल सकता है।



देव संस्कृति विश्वविद्यालय
शान्तिकुञ्ज, हरिद्वार



जीवन विद्या का आलोक केन्द्र। यहाँ के स्नातक मात्र जीविकोपार्जन हेतु नहीं, अपितु नैतिक दायित्व स्वीकारते हुए समाज एवं राष्ट्रोत्थान के लिए संकल्पित व प्रयत्नशील होते हैं। विद्यार्थी योग, मनोविज्ञान एवं धर्मविज्ञान जैसे प्रमुख सत्रों में भाग लेकर न केवल अपने स्वास्थ्य, व्यक्तित्व एवं साधना को प्रखर बनाते हैं, अपितु अज्ञान, अशिक्षा, अभावजन्य विषमताओं से लड़ते हुए जनसामान्य को भी लाभान्वित करते हैं। इस संस्थान की शाखा-प्रशाखाएँ सम्पूर्ण राष्ट्र में स्थापित करने की योजना है।







विचार क्रान्ति अभियान, शान्तिकुञ्ज, हरिद्वार

Code No. SV 40

